# सोमसी

अक्तूबर 89

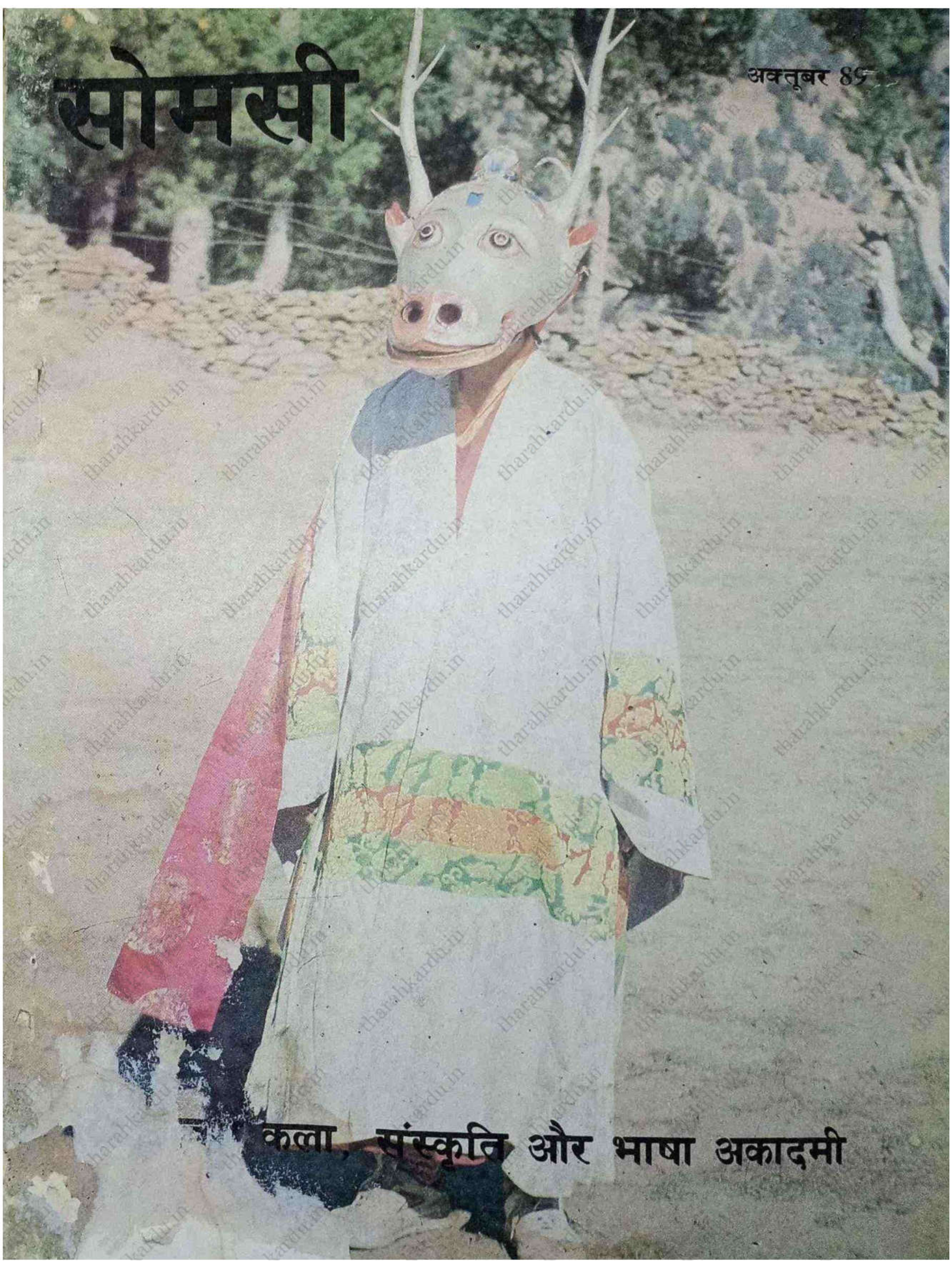

कला, संस्कृति और भाषा अकादमी

tharahkardu.in

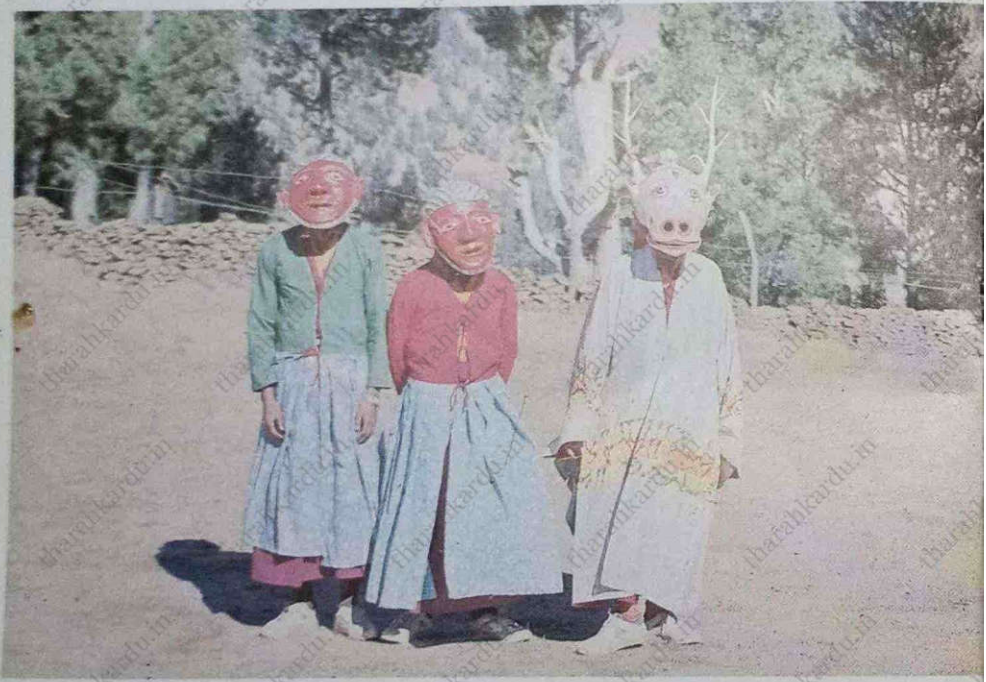

'शवा' नृत्य के कलाकार

आवरण पृष्ठ — ताबो (स्पिति) गोन्पा का 'शवा' नृत्य कलाकार

वर्ष : 15
अंक 4, अक्तूबर 1989
पूर्णांक : 60
जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

# सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति और साहित्य की त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक
**डॉ० बंशीराम शर्मा**

सम्पादन एवं प्रकाशन सहयोग
सरोज सांख्यायन
रमेश जसरोटिया
कर्म सिंह
जयवन्ती चौहान

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में दिए गए तथ्यों से संपादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

पारदर्शियां हिमाचल अकादमी प्रलेखन संग्रह

वार्षिक मूल्य : 12/- बारह रुपये
एक प्रति : 3/- तीन रुपये

प्रकाशक : सचिव,
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
क्लिफ़ एण्ड एस्टेट शिमला-171 001 हि०प्र०
दूरभाष : 6330, 4993

# अनुक्रम


| क्र.सं. | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| | सम्पादकीय | | i |
| 1. | लोकधर्मी नाट्य परम्परा—बांठड़ा | ज्वाला प्रकाश 'चेतन' | 1 |
| 2. | स. सोभा सिंह की कला एक जीवंत धरोहर | किशोरी लाल वैद्य | 28 |
| 3. | हिमाचल की साठोत्तरी हिन्दी कहानी | डॉ० प्रत्यूष गुलेरी | 31 |
| 4. | महर्षि पराशर का पावन धाम | डॉ० विद्याचन्द ठाकुर | 40 |
| 5. | माणूं का झेड़ा | प्रकाश चन्द्र धीमान् | 46 |
| 6. | पारम्पारिक मुखौटा निर्माण कला : एक सर्वेक्षण | नरेन्द्र 'अरुण' | 49 |
| 7. | हिमाचली लोकनाट्यों का शिल्प | डॉ० ओम प्रकाश सारस्वत | 52 |
| 8. | सोलन के लोकगीत एवं लोकनृत्य | ठाकुर जयकिशन सिंह | 55 |
| 9. | करियाला : कुछ प्रश्न | डॉ० कैलाश आहलूवालिया | 61 |
| 10. | काँगड़ा के जन्म संस्कार गीत और कृष्ण | मीनाक्षी शर्मा | 65 |
| 11. | वेद और वनसम्पदा | डॉ० कर्म सिंह | 72 |
| 12. | झेड़ा | सरोज ठाकुर | 76 |
| 13. | मुखौटा निर्माण कार्यशाला—एक महत्वपूर्ण आयोजन | अशोक हंस | 79 |
| 14. | साच जात्तर व जुकारू त्यौहार | रमेश जसरोटिया | 89 |

# सम्पादकीय

सोमसी पत्रिका वर्ष १९७५ से प्रकाशति हो रही है। पत्रिका के गत वर्षों के अंकों में हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक तथा कला सम्बन्धी धरोहर पर अनेक संग्रहणीय लेख प्रकाशित हुए हैं। इस पत्रिका का शोधकर्ताओं द्वारा विशेष स्वागत हुआ है और इसकी सामग्री से प्रेरणा पाकर विश्वविद्यालयों में शोध विषयों के प्रारूप बनाने में शोधार्थियों को सहायता मिली है। यह सब हमारे साहित्यकार बन्धुओं के सहयोग से ही सम्भव हो पाया है। इसके लिए हम विद्वद्जनों के विशेष आभारी हैं।

प्रस्तुत अंक में शोध की दृष्टि से विशिष्ट सामग्री पाठकों की सेवा में संजोई गई है। पत्रिका का लोकनाट्य विशेषांक जुलाई, १९८९ में प्रकाशित हुआ था। उसमें प्रदेश की लोकनाट्य परम्परा पर अनेक शोधपरक लेख थे और हमने यत्न किया था कि लोकनाट्यों के मौलिक स्वरूप को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाए। इसके लिए आलेख समीक्षात्मक न होकर यथातथ्य विषयपरक थे। कुछ सामग्री जो उक्त अंक में सम्मिलित नहीं की जा सकी, प्रस्तुत अंक में प्रकाशित की जा रही है। इस सामग्री में श्री ज्वाला प्रकाश 'चेतन' का लेख लोक धर्मी नाट्य परम्परा—बांठड़ा इस विधा के इतिहास पर नए सिरे से विचार करने के लिए बाध्य करता है। बांठड़ा लोकनाट्य का मुख्य प्रभाव क्षेत्र सुकेत रियासत रहा है परन्तु इस परम्परा का प्रचलन मण्डी, कुल्लू तथा बिलासपुर रियासतों के कुछ भागों में भी रहा है। बांठड़ा का सम्बन्ध कांगड़ा के 'भगत' तथा सोलन व शिमला क्षेत्रों में प्रचलित 'करियाला' लोकनाट्यों से भी रहा है। बांठड़ा के एक स्वांग में वल्कल पहने 'देव' को दरशाना इसे प्रकृति पूजा से भी जोड़ता है। देवस्थानों में बांठड़ा व करियाला लोकनाट्यों का आयोजन इस लोक-परम्परा का सम्बन्ध हमारे धार्मिक विश्वासों के साथ भी प्रतिष्ठापित करता है। करियाला का शाब्दिक अर्थ सोलन क्षेत्र की लोकभाषा में प्रचलित 'क्रेल़' अथवा 'करेल़' से जुड़ता है। 'करेल़' का अर्थ 'मनौती' अथवा 'देवेच्छा' होता है। करियाला का आयोजन इच्छापूर्ति पर किए जाने की परम्परा अभी तक भी सोलन व अन्य क्षेत्रों में प्रचलित है। मनौती करने के पश्चात् यदि इच्छापूर्ति हो जाती है तो इस लोकनाट्य के कलाकारों को गृहस्वामी घर पर आमन्त्रित करके कलाकारों को को 'डेरा' (एक दिन का आवास व भोजन) देता है। 'बांठड़ा' का शाब्दिक अर्थ भी 'बांठ' अथवा 'देव विशेष का भागधन' होता है। इस शब्द को कुछ विद्वानों ने 'कला सभा' अथवा 'कला गोष्ठी' से भी सम्बद्ध किया है और इसके इतिहास पर चर्चा करते हुए इस परम्परा को 'राज्याश्रित कलाकार सम्मेलन' बताया है परन्तु प्रस्तुत लेख पर गहन दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि 'बांठड़ा' देव परम्परा का एक सशक्त लोकधर्मी अंग रहा है और न्यूनाधिक रूप से यह भी करियाला की भांति मन्दिरों में आयोजित होता रहा है। 'बांठड़ा' के लोक कलाकारों को समय-समय अपने मनोरंजन के लिए किसी राजा द्वारा आमन्त्रित किया जाना अथवा उनकी महफिलों में स्वयं उपस्थित होकर संगीत व नृत्य का रसास्वादन करना इस परम्परा के लिए प्रेरक उपादान तो हो सकता है परन्तु इसके लोकधर्मी रूप को उससे क्षति भी पहुंची होगी। 'लोक-मानस' अपने मनोरंजन के साधनों की खोज के लिए राज्याश्रित नहीं रहता परन्तु यदि सुरुचिवान शासक उसे आश्रय प्रदान

करता है तो उसका मानक रूप स्थिर होकर उसे अपेक्षाकृत स्थायी आधार प्रदान कर देता है। कुल्लू क्षेत्र, विशेष रूप से बाह्य सिराज के क्षेत्रों में बूढ़ी दीवाली उत्सव के अवसर पर गांवों के सभी समुदायों के लोक कलाकारों द्वारा किसी न किसी रूप में उत्सव में भाग लेना प्राचीन काल में किसी शासक द्वारा आदिष्ट लोकमनोरंजनविधाओं, जिन्हें सामाजिक सौहार्द की भावना के दृष्टिगत प्ररूपित किया गया हो, पर आधारित माना जा सकता है। निरमण्ड गांव की बूढ़ी दीवाली के अवसर पर 'अलाव' के आसपास ब्राह्मण-वर्ग के लोग नृत्य आरम्भ करते हैं, कुछ देर के पश्चात् राजपूत वर्ग के कलाकार उनमें सम्मिलित हो जाते हैं। इन्हें 'गढ़िए' कहा जाता है। 'गढ़िए' अलाव की रक्षा का भार वहन करते हैं और बाद में हरिजन वर्ग के कलाकार जिन्हें 'दानवें' कहा जाता है, इस उत्सव में अलाव से आग प्राप्त करने के उद्देश्य से आते हैं। दोनों वर्गों में 'बनावटी युद्ध' होता है और बाद में 'दानवें' मशालों के लिए आग प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार 'निरशु' व 'ठिरशु' उत्सवों में भी सभी वर्गों की भूमिका रहती है जो सामाजिक सौहार्द के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लोक-कलाओं में मुखौटों का विशेष महत्व है। मुखौटे हमारे विचारों का परिष्कार करते हैं। मनोविज्ञान की भाषा में एक शब्द 'कैथारसिस' का विशेष महत्व है। यह 'सामाजिक विरेचन' के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द है। यदि हमारे भावों का 'विरेचन' अथवा प्रकटाव न हो तो वे सामाजिक व्यक्तित्व को प्रदूषित कर देते हैं। होली, बूढ़ी दीवाली, फाग, काहिका, नगेहड़, भूण्डा, फुल्याच़, उतरैण, दखणैण आदि उत्सवों के अवसरों पर अश्लील आवाजें लगाने की परम्परा सामाजिक विरेचन ही तो है। लोकनाट्य इस प्रक्रिया का सशक्त माध्यम हैं। इस अंक में मुखौटों व लोकनाट्यों पर प्रकाशित सामग्री इस दृष्टि से संग्रहणीय है।

कुछ नए आयामों से सम्बन्धित सामग्री भी आपको इस अंक में प्राप्त होगी। इसमें भाणूं का भेड़ा (प्रकाशचन्द्र धीमान), करियाला : कुछ प्रश्न (डॉ० कैलाश आहलूवालिया), हिमाचली लोकनाट्यों का शिल्प (डॉ० ओमप्रकाश सारस्वत), वेद और वनसम्पदा (डॉ० कर्म सिंह), भेड़ा (सरोज ठाकुर), सरदार सोभासिंह की कला:एक जीवन्त धरोहर (किशोरी लाल वैद्य) आदि लेख उल्लेखनीय हैं। इस अवधि में प्रलेखन कार्य से सम्बन्धित कुछ आलेख भी पठनीय सामग्री प्रस्तुत करते हैं। गत एक आयोजन में हिमाचल की साठोत्तरी हिन्दी कहानी के सम्बन्ध में पठित विषय पत्र पाठकों की प्रतिक्रिया के लिए इस अंक में सम्मिलित किया गया है।

आशा है कुल मिला कर यह अंक पाठकों को आकृष्ट करेगा और उनके अव्यक्त साहित्यकार व शोधकर्ता स्वरूप को प्रस्फुटित व उदीप्त करने में सहायक सिद्ध होगा।

बंशीराम शर्मा

# लोकधर्मी नाट्य परम्परा— बांठड़ा

ज्वाला प्रकाश 'चेतन'*

'बांठड़ा' एक लोकधर्मी नाट्य परम्परा से सम्बन्धित है। क्योंकि हिमधरा एक पावन भूस्थली है। यहाँ प्रकृति नटी अपने विभिन्न रूपों में श्रृंगार करके देवों, दानवों, यक्षों, राक्षसों, किन्नरों और गन्धर्वों को आदिकाल से आकर्षित करती आ रही है। लोकधर्मी नाट्यपरम्परा 'बांठड़ा' इसी पावन धरा की उपज है। इस पावन हिमधरा का कण-कण गीतों व संगीत की गूजों से गुंजायमान रहता है। संगीत व गीत झरनों का हो या परिन्दों का, सनसनाती पवन का हो या ग्राम्य बाल-बालाओं का हो, परन्तु वातावरण सदैव संगीत के स्वरों से गुंजायमान रहता है। यहाँ का प्रत्येक तत्व देवमय है। यहाँ की लोकसंस्कृति आदिकाल से विलक्षण रही है।

**पैराणिक पृष्ठभूमि** भारतीय संस्कृति का प्रत्येक अंग भौतिकता से नहीं प्रत्युत आध्यात्मिकता से ही सतत सराबोर है। इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को मद्दे नज़र रखते हुए प्रत्येक विधा या कार्यकलापों का विभाजन या मूल रूपरेखा तैयार की गई है। इस भान्ति नाट्य विधा का यह प्रभाग बांठड़ा भी ललित कलाओं द्वारा आध्यात्मिकता को ही समर्पित है। इसका वर्णन विष्णु धर्मोत्तर उपपुराण में इस प्रकार मिलता है :

**नृत्तं गीतं तथा वाद्यं दत्त्वा देवाय विष्णवे।**
**सर्वकाम समृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते।।**
**देवता राधनं कुर्याद्यस्तु नृतेन धर्म वित्।**
**स सर्व काममाप्नोति मोक्षोपायं च विन्दति।।**
**धन्यं यशस्य मायुष्यं स्वर्गलोकप्रदं तथा।**

**विष्णुधर्मोत्तर ३(३५—२७,२९,३०)**

विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण में संगीत, शास्त्र के गीत लक्षण सप्तस्वरों की उत्पत्ति, स्वर, ताल, लय, गायक, वादक, तथा वाद्यों के भेद, अभिनय कला, नृत्य लास्यादि के भेद, विभिन्न अभिनयों का वर्णन मिलता है। उपरोक्त श्लोक इस विधा को काम, अर्थ, धर्म, की पूर्ति के उपरान्त मोक्ष की ओर इंगित करता है कि नृत्त, गीत तथा वाद्यादि के द्वारा भगवान विष्णु को प्रसन्न करना चाहिये। उससे यज्ञ के फल के समान सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। धर्म के जानने वाले को नृत्य के द्वारा भगवान की आराधना करनी चाहिये। इससे सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग भी प्रशास्त होता है। वह सौभाग्य, कीर्ति, आयु तथा स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

यों तो नट् विधा या नाट्य के अंकुर वेदों से ही आरम्भ हो चुके थे। ऋग्वेद में कई सम्वाद सूक्त आते हैं

* गांव ममेल, डाक० व तह० करसोग, ज़िला मण्डी (हि०प्र०)

जिनमें पुरुरवा और उर्वशी का सम्वाद बहुत प्रसिद्ध माना गया है। इन सम्वाद सूक्तों का कथोपकथन नाट्य शास्त्र का सूत्रपात माना जाता है।

वेदों व पुराणों के मतानुसार सांसारिक प्राणियों को विपत्तियों से क्लान्त देखकर इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना करके वेदों की रचना करवाई। चार वेदों की रचना करवा कर उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों द्वारा उपयोग में लाये जाने के अधिकार तो दे दिये—परन्तु चौथे वर्ण शूद्र व नारियों को इसके श्रवण करने तथा उपयोग करने से वंचित रखा गया—क्योंकि वेदों की ऋचायें इतनी क्लिष्ट तथा गूढ़ थी कि उन्हें समझ पाना शूद्रों व नारियों के सामर्थ्य से दूर की वस्तु थी इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए ब्रह्मा जी ने विशेषकर शूद्रों व नारियों के लिये पंचम वेद की रचना की—इसमें ऋग्वेद से 'पाठ्य वस्तु' सामवेद से 'गान' यजुर्वेद से 'अभिनय' तथा अर्थवभेद से 'रस' लिया गया।

पंचम वेद की इस नाट्य विधा के प्रवर्तक भरतमुनि को माना जाता है। इन्होंने सर्वप्रथम नाट्य शास्त्र का सृजन करके इसे एक स्वतन्त्र विज्ञान या विधा बनाकर इसका महत्व उपस्थित किया। इसी नाट्य शास्त्र को पंचम वेद के रूप में स्वीकार किया गया है। यथा —

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
युजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि।।

(नाट्यशास्त्र अ० १ श्लोक १७)

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी संगीत तथा वाद्य के विषय में कहा गया है —

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्च प्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति।।

(याज्ञवल्क्य स्मृति ३/११५)

अर्थात् जो वीणावादन का तत्व जानने वाला है, श्रुतियों की जाति पहचानने में निपुण है और तालों का ज्ञाता है—वह बिना परिश्रम किये ही मोक्ष को पा लेता है। और उससे आगे भी कहा गया है—

अतो गीत प्रपंचस्य श्रुत्यादेस्तत्वदर्शनात्।
अपि स्यात्सचिदानन्दरूपिणः परमात्मनः।।
प्राप्तिः प्रमावृत्तस्य मणिलाभो यथा भवेत्।
प्रत्यासन्नतयात्यन्तम्...।।

'गीत की श्रुति-आदि के तत्वदर्शन से सच्चिदानन्द परमात्मा की प्राप्ति वैसे ही हो जाती है—जैसे अग्निशिखा के उद्देश्य से प्रवृत्त पुरुष को मणिलाभ होता है।' काव्य शास्त्र के अनुसार काव्य के दो भेद किये गये हैं। एक श्रव्य काव्य और द्वितीय दृश्य काव्य। चारों वेद श्रव्य काव्य के अन्तर्गत आते हैं—इसे पढ़कर या सुनकर रस की प्राप्ति होती है और यह निम्न वर्ग या वर्ण शूद्रों व नारियों के अधिक उपयुक्त नहीं माना गया है। अतः चतुर्वेदों के दोहन से पंचम वेद नाट्य शास्त्र का प्रणयन किया गया है, जो नाट्य विधा के रूप में दृश्य काव्य कहलाता है।

जिस काव्य का आस्वादन नयनेन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष दृश्यविधान के माध्यम से किया जाता है उसे दृश्य काव्य कहते हैं। इसका मुख्य क्षेत्र रंगमंच है। रंगमंच पर ही इसकी समस्त घटनायें प्रस्तुत की जाती है। अतः सब कुछ मूर्त एवं चाक्षुष होता है। यह चाक्षुष या मूर्त दृश्य विधान नट-नटियों व अन्य विशिष्ट अभिनेताओं के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है अतः इसमें अत्यधिक संजीवता तथा तन्मयता आ जाती है। इसी कारण इसे कलाओं या साहित्यिक विधाओं में श्रेष्ठता प्रदान की गई है। दृश्य विधान पात्रयोजना, उनकी वेषभूषा, विभिन्न प्रकार का हाव-भाव प्रदर्शन और सम्वाद आदि मिलकर दृश्य काव्य के स्वरूप का विधान करते हैं। श्रव्य काव्य का आनन्द उसे सुनकर या पढ़कर कल्पना के द्वारा संकेतों का बिम्ब ग्रहण करके प्राप्त किया जा सकता है। इससे सामान्य पाठक या श्रोताओं को कठिनाई का अनुभव हो सकता है। दृश्य काव्य में नयनों से देखकर उसके भाव तत्व को ग्रहण कर रसास्वादन में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। इसमें कल्पना पर अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं होती, दर्शक सब कुछ अपने समक्ष घटित होता हुआ अनुभव करता है। परिणामतः उसमें एक स्वभाविकता और वास्तविकता प्रतीत होती है। जिससे सामान्य दर्शक भी तत्काल रसान्वित हो जाता है। श्रव्य काव्य में सांकेतिकता अधिक रहती है जबकि दृश्य काव्य में प्रत्याक्षानुभूति। इसमें श्रव्य काव्य के समान केवल शब्दों का ही विधान नहीं होता, बल्कि तदनुकूल अभिनय, नृत्य, संगीत, हाव-भाव प्रदर्शन आदि भी रहते हैं—सबसे प्रमुख बात यह है कि इसमें वास्तु या स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, संगीत आदि अन्य ललित कलाओं का समावेश और उनके सम्मिलित प्रभाव के कारण इसका उन्मेष सहज ही हो जाता है। इतना ही नहीं इसमें इतिहास, समाज शास्त्र तथा अन्य व्यवहारिक शास्त्र तथा उपयोगी कलायें भी समाविष्ट हो जाती हैं—नाट्य शास्त्र के आदि आचार्य भरत मुनि ने लिखा है:—

**न तच्छ्रास्त्रं न तच्छिल्पं न सा विधा न सा कला।**
**न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।**
**सर्वशास्त्राणि शिल्पाणि कर्माणि विविधानि च।**
**अस्मिन्नाट्ये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम्।।**

**(नाट्य शास्त्र १/१०९, ११०)**

अर्थात् ऐसा कोई शास्त्र और शिल्प नहीं, ऐसी कोई विधा या कला नहीं, ऐसा कोई योग अथवा कर्म नहीं जो नाट्य (दृश्य काव्य) में दिखाई नहीं देता, समस्त शास्त्र-शिल्प तथा विविध प्रकार के कर्म इस नाट्य में सम्मिलित हैं। इसीलिये मैंने (भरतमुनि ने) नाट्यशास्त्र की रचना की है। इससे सिद्ध हुआ कि नाट्य विधा एक स्वतन्त्र विज्ञान है जो वैदिक काल से लेकर आज तक देश, काल, वातावरणानुसार लोकानुरंजन का सशक्त माध्यम बना हुआ है।

आदि काव्य बाल्मीकीय रामायण में भी नाट्य विषयक कई प्रमाण मिलते हैं। महाभारत में भी नट् शब्द का कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है। महाभारत के अन्तर्गत हरिवंश पुराण में भी रामायण से कथा लेकर लोकानुरंजन तथा भगवान के प्रति आस्था दृढ़ करने हेतु नाटक खेलने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। अग्नि पुराण में भी दृश्य काव्य की विवेचना की गई है। यही परम्परा देश, काल व वातावरण के अनुरूप भारत खण्ड के प्रत्येक आंचल में विभिन्न तकनीकों द्वारा लोकानुरंजन का साधन बन कर विभिन्न नामों से संस्कृति में समाहित है। जिन्हें आंचलिक जामा पहना कर विभिन्न रूपों से मंचस्थ तथा संप्रेषित किया जाता है। उसी का एक रूप 'बांठड़ा' विधा भी है।

**ऐतिहासिक पृष्ठभूमि** वेद व पुराणकालीन यह नाट्य विधा लोकानुरंजन व ज्ञान, भक्ति के प्रसारण का सशक्त माध्यम रही है। इसी नाट्य कला के विभिन्न स्वरूप भी अपने-अपने क्षेत्रों में कार्यरत रहे जिनका पोषण कुछ पारम्परिक कलाघराने करते रहे और उन्हें सर्वथा राजकीय संरक्षण व मठ मन्दिरों की ओर से आजीविका मिलती रही जिससे ये विधायें विकास व स्थैर्य प्राप्त करती रहीं। संसार में जन्म ग्रहण करने के उपरान्त तथा सामाजिक बन्धन में बन्ध जाने के बाद, मानव-मात्र के लिये अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष ये चार बातें जीवन यापन हेतु शास्त्र सम्मत मानी गई हैं। अत: इन नाट्य विधाओं से जुड़े कलाप्रेमियों व कलाकारों के लिये आर्थिक सहयोग राजा, महाराजाओं, सामन्तों व मठों, मन्दिरों के व्यवस्थापकों द्वारा आरक्षित व प्रदाय होता था। नाट्य-मंचन व सम्प्रेषण उस काल में धर्म का सोपान माना जाता था। क्योंकि नाट्याभिनय धर्मकथाओं नीतिकथाओं तथा अन्य पौराणिक आख्यानों से जोड़ा जाता था और वे पारम्पारिक घराने इसी के द्वारा धर्म का निर्वाह करते थे। जीवन भर भगवान का नाम व संकीर्तन में जुड़े रहने से उन्हें मोक्ष की भी पूर्ण आशा रहती थी। इन विधाओं से सम्बन्धित व्यक्ति पूर्णतया वैदिक शिक्षानुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से अपने आप को पूर्ण मान कर तल्लीनता से इस क्षेत्र से जुड़े रह कर सम्मान जनक जीवन व्यतीत करते थे तथा जीवन भर कला के क्षेत्र में नये-नये अनुसंधान तथा तकनीक जोड़ कर नाट्य विधा तथा उनके अन्य स्वरूपों को परिपुष्ट किये करते थे क्योंकि वे लोग परम्परा से उससे जुड़े हुए रहते थे। इस विधा की परिपुष्टि हेतु जनसहयोग तथा राजकीय संरक्षण पूर्णतया मिलता रहता था। यही कारण है कि ये विधाएं बहुत काल तक जीवित रह पाईं और जन-जन के मन का अनुरंजन करके समाज व संस्कृति का मुख्य अंग बन गईं। प्राय: संगीतज्ञ, नट, वास्तुकार व मूर्तिकार वैदिक काल से ही राजकीय संरक्षण पाकर या किसी धर्म स्थल की शरण पाकर पोषित होते रहे और मुक्त रूप से कला के लिये समर्पित रहे। आदिकाव्य बाल्मीकीय रामायण में भी नटों को राजा द्वारा पोषित तथा संरक्षित होने का वर्णन मिलता है।

नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तका: ।।

(बाल्मीकीय रामायण - २/६७/१५)

**अत: स्पष्ट है कि राजकीय संरक्षण व प्रोत्साहन पाकर ही सभी ललित कलायें उन्नत हुई हैं—जैसे कि उपरोक्त श्लोकार्थ से स्पष्ट है। जिस जनपद में राजा नहीं है वहां नट व नर्तक प्रसन्न दिखाई नहीं देते। मानव मात्र का जन्म लेने के उपरान्त जीवन जीने हेतु सर्व प्रथम प्रश्न है—आजीविका अथवा रोजी-रोटी का सवाल! यदि यह प्रश्न हल हो जाता है तो सभी कलाकार, साहित्यकार या मूर्तिकार, अपनी स्वभाविक वृत्ति के अनुसार कला को समर्पित होकर उसकी आजीवन आराधना करके उसे पर्याप्त उन्नत कर सकते हैं। यदि उन्हें रोज़ी-रोटी की चिन्ता सताती रही तो वे कला को नहीं रोटी को समर्पित हो जायेंगे।**

**इतिहास के पृष्ठों को उलटने से भी यही बात सिद्ध होती है कि जब-जब कलाकारों, साहित्यकारों, मूर्तिकारों व वास्तुकारों को राजकीय संरक्षण व प्रोत्साहन मिलता रहा उस काल में उपरोक्त विधाओं में अत्यधिक उन्नति हुई उन कालों की कला के क्षेत्रों में हुई उन्नति आज भारतीय संस्कृति का गौरव बनी हुई है। मुगलकालीन भारत कला के क्षेत्र में पर्याप्त पिछड़ा प्रतीत होता है। हां उस युग में वास्तु कला की उन्नति अवश्य हुई है। ललित कलाओं की उन्नति स्वतन्त्र रूप में भी होती है—परन्तु उसके लिये राजकीय संरक्षण न सही, प्रोत्साहन तो अवश्य ही होना चाहिये। आत्म निर्भरता इन विधाओं के लिये पहल अनिवार्य शर्त है।**

**नाट्क व बांठड़ा** यह बात पहले ही स्पष्ट कर दी गई है कि बांठड़ा विधा नाट्य का ही एक अंश है। देश, काल व वातावरण के अनुसार उसकी तकनीक व नाम में आंचलिकता के अनुसार अन्तर व भेद अवश्य आया है—परन्तु मूल रूप में वह एक नाट्य विधा ही है, जिसे लोकनाट्य कहना अधिक उपयुक्त होगा। आचार्य भरत के अनुसार :—

**योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःख समन्वितः।**
**सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो, नाट्यमित्यभिधीयते।।**

'जिसमें स्वभाव से ही लोक का सुख-दुःख समन्वित होता है, और जिसका अंगों आदि के द्वारा अभिनय किया जाता है, उसे नाटक कहते हैं।'

प्रसिद्ध बांठड़ाकार श्री नारायणदास ने भी 'बांठड़ा' की इससे मिलती-जुलती व्याख्या की है :—

**जीओआरे खरे याड़े रा वखाण कर,**
**अंगो वाणि ते रचीआ देओ सजाई।**
**सजे खाहड़े मभ्का परमाण कर,**
**सेई बांठड़ा नांओ धराई।।**

नारायणदास : बांठड़ा नाट

'मन के शुभ व अशुभ विचारों अर्थात् भले बुरे विचारों व कार्यकलापों को शरीर के अंगों व वाणी द्वारा अभिनीत कर या अभिनय द्वारा सजा कर और उसे मंच (खाहड़े) पर प्रमाणित करके जन सभा के भीतर प्रकट करने का नाम ही 'बांठड़ा' है।'

नाटक, जीवन की अभिनयात्मक अनुकृति है :—

**सगरी संसारी बणोआ खाहड़ा,**
**नट्ट सगरे भोड़े लोक।**
**दुःखा सुखा रे जीओण पचड़े,**
**किथी सगण किथी सोक।।**
**भोड़े जीऊ भुलाणे जो,**
**खाहड़े दिते सजाई।**
**ए संसारी रैहण बसेरा,**
**बांठड़ा रची के देणा समभ्काई।।**

नारायणदास : बांठड़ा नाट

'यह सकल जगत् एक खुला मंच है—इसमें उत्पन्न सब जन एक नट के रूप में उभरे हैं—इस लोक में उत्पन्न मानव का जीवन दुःख और सुख रूपी पलड़े में बंटा है—इस प्रकार दुःख के समय धैर्य रखने के लिये सुख के आगमन की आशा व सुख के समय अभिमान तथा ईश्वर की सत्ता को स्मरण रखने के लिये दुःख की स्मृति बनाये रखने के उद्देश्य से ये मंच रचे जाते हैं। क्योंकि यह संसार नश्वर है इसके दुःख-सुख भी नश्वर है, जीवन भी क्षण भंगुर है—केवल एक ईश्वरीय सत्ता ही नित्य है व अनश्वर है—इसी विषय को समभ्काने के

लिये 'बांठड़ा' की रचना या सृष्टि की गई।'

उपरोक्त परिभाषायें सभी भारतीय मत की हैं जो नाट्य शास्त्र के संदर्भ में प्रचलित हैं वहीं बांठड़ाकारों की परिभाषायें भी है। इसके अतिरिक्त नाट्य विधा के विषय में अंग्रेजी विद्वान् 'निकल' की परिभाषा 'Drama is copy of life, a mirror of custom, a reflection of Truth.'

अर्थात् नाटक जीवन की प्रतिलिपि है। प्रथाओं का दर्पण और सत्य का प्रतिबिम्ब है। बांठड़ाकार ने भी इससे मिलती जुलती बात इस पद्यांश में कही है :—

खरी बुरी बिरती रा,
पुतला लया बणाई।
जातिया ऐ आरशू मभ्क (मंभ्क)
आपू देखी आपणी परछाई।।

नारायणदास : बांठड़ा नाट

अर्थात् मानव समाज में जिस प्रकार की भली, बुरी वृत्तियां तथा रीति रिवाज हों तथा जिस प्रकार की जातीय संस्कृति हो—उसका 'बुत' बनाकर मानव समाज रूपी दर्पण (आरशू) में दिखाने का नाम ही बांठड़ा है। अर्थात् अपनी भली-बुरी सूरत को देखने का अवसर हमें बांठड़ा मंच पर मिलता है। ध्वनि व प्रकाश के इस युग में नाट्य विधा अपनी शास्त्रीय प्रणाली छोड़ कर अंग्रेज़ीयत की ओर अधिक झुकाव लेती दृष्टिगोचर हो रही है। आज नाटक का संप्रेषण व मंचन युगीय जीवन के अनुरूप संगीत व कला के बिना भी हो सकता है—परन्तु बांठड़ा कला, गीत व संगीत से पृथक् नहीं हो सकता—क्योंकि बांठड़ा का सूत्रपात ही कलाकृतियों, गीतों व संगीत के सानिध्य से होता है।

पौराणिक युग में साहित्य, कला, गीत संगीत इत्यादि को न जानने वाले व्यक्ति को सींग व पूंछविहीन पशु माना जाता था :—

साहित्य संगीत कलाविहीनः।
साक्षातपशुः पुच्छविषाणहीनः।।

इसी आशय को बांठड़ाकार निम्नलिखित शब्दों में व्यक्ति करता है :—

गीते न संगीते न कले न भाखे।
नगुणे माहणू ते होर क्या आस राखे।।
लोके न परलोके न भाग न नभाग।
इन्हा गुणे बाभ्की माहणू, जेड़ा अलणा साग।।

नारायदास : बांठड़ा नाट

जो व्यक्ति गीत, संगीत, कला, भाषा (साहित्य, वाणी) के क्षेत्र में अनभिज्ञ है—ऐसे गुणों से रहित व्यक्ति से क्या आशा रखी जा सकती है—कि वह समाज को कुछ दे जायेगा। इन गुणों से हीन व्यक्ति न इस लोक का कल्याण ही कर सकता है और ना परलोक (स्वर्ग) के सोपान को ही लांघ सकता है।

उपरोक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि बांठड़ा विधा नाट्य शास्त्र या विधा से पृथक् नहीं है।

परम्परा : लोक धर्मी नाट्य परम्परा बांठड़ा यद्यपि नाट्य शास्त्र का एक अंग होने के कारण अति प्राचीन है—तथापि ग्यारहवीं सदी से इस विधा के विकास के प्रमाण मिलते हैं—क्योंकि प्रसिद्ध तान्त्रिक साहित्य के प्रणेता धूरजट्ट का साहित्यिक काल ११वीं सदी के लगभग रहा है। मार भाषणी में उन्होंने अपने जन्म के विषय में यह पद्यांश लिखा है—

शीरो बीरो ईजो बायो, काहणों बाहणों संवा गराओं।
एके एके दूये चार, रैचे मगढ़वार, समते जाओ-डाहो धूरजट्ट नांओ।।

मारभाषणी : धूरजट्ट

इस पद्यांश से सिद्ध होता है कि उनका जन्म सं० ११२४ को हुआ और सं० ११५० से सं० १२१० तक वे तान्त्रिक साहित्य के क्षेत्र में छाये रहे। श्रीपत हरिमन भाई ने उन्हें अपना बांठड़ा क्षेत्र का गुरु स्वीकार किया है :—

वारहा सौ वारहा सम्वते, श्रावणी शुक्ला तीज।
तृप्ता आत्मा गरमे, जम्या एक कविज।।
रगहड़े क्षेत्रो बांठड़ा, धूरजट्ट गुरु बणायें।
मारुराग रची कने, भणे भणे बतायें।।

मारुराग : श्रीपत हरिमन भाई

इससे सिद्ध हुआ कि श्रीपत हरिमन भाई का जन्म सं० १२१२ में हुआ और उन्होंने बांठड़ा क्षेत्र में धूरजट्ट को गुरु बना कर इस परम्परा को आगे बढ़ाया तथा 'मारुराग' (मृत्युगीत) की रचना की। श्रीपत हरिमन भाई के शिष्य श्रुति मिश्र हुये—इनका जन्म उनके आलेखानुसार :—

'श्री गणेशायनमः। श्री विक्रमी सम्वत बारहा सौ नब्बे मह श्रीमतः वामन मिश्र तै श्रीमति वाशला शुभ पावने गर्भा च शुभ सनैण नाम्ना गृहे रात्रौ महे प्रथम प्रहरे भादो मासे चर्तुदशी तिथ्यो जन्म धारणे करिवैः।। सोलहा वर्षोपरान्ते महामान्ये गुरु श्रीपत गृहे शरण ग्रहण करिवैः। काव्य, रागः बांठड़ा छेत्रो शिच्छया धारिततैः। श्री गुरु चरणे नमित वैः सदृशिच्छया ग्राहचते च मोक्षे पदः अधिकारे शुभाशिषे सद्गति धारण करिवैः।

महायान जात्रा : श्रुति मिश्रा

इनकी शिष्य परम्परा में तथा बांठड़ा विधा को अग्रसर करने वाले श्रीशंकर स्नेही का जन्म सं० १३६२ विक्रमी रविवार चैत्र मास की दूज तिथि को हुआ। उन्होंने श्रुति मिश्र से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करके १३-१४वीं सदी में बांठड़ा परम्परा को गति देकर आगे बढ़ाया। अपनी रचना 'संगार पटारी' में उन्होंने अपना तथा अपने गुरु का परिचय इस प्रकार बखान किया है :—

तेरहा सौ बरसे तीन वीक्षी दो महे, सूरज वारे, शुक्ला दूजे चैतर मासे।
शुभ नछत्रो ता शुभं ग्रहे, धूप गरमा ते भये प्रकाशे।।
आमा इन्दू वा विन्दो गरम दुःख सहे, भये सगण हुये मगणापुतर आसे।

हुये नौपरनौ शंकर सनेही नांओं कहे, श्रुतिमिश्रा गुरु भये सर्व दुःख नाशे।।
ज्ञान ध्यान रीति नीति गुण लहे, शिच्छया दीच्छिया चहुँ पासे।।
गीत संगीत नृत बांठड़ा बहे, मुक्ति भुक्ति भोगी, हरिचरण गासे।।

संगार पटारी : शंकर स्नेही

बांठड़ा की इस पावन परम्परा को शंकर स्नेही के शिष्य श्री जगत सुख ने सहर्ष निभाकर इस विधा को जीवन समर्पित कर दिया—उनका जन्म विक्रमी सम्वत १४०३ में हुआ इस विषय में उन्होंने 'डामरडोर', के मंगलाचरण में लिखा है:—

चौदहा भुवन तीन तरलोकी, विक्रमी समत लयो बनाय।
कृष्णा चौथी, चन्द्रा मगरे, श्रीधर गृहे सगण मनाय।।
शंकर वर ते गुरु शंकर सनेही, भाखा, कवित्त, नीति सखाय।
गीत निरत, खाहड़ा सबद, सभा माहे धूम मचाय।।
सगरी संसारी, लगे निसारी, जगतसुख नांओं धराय।
जीऊ सपना, कोई नाही अपना, भव खन्द से भय खाय।।

डामर डोर : जगत सुख

इसी परम्परा में जगत सुख के उपरान्त उनके शिष्य श्रीरामसाई बांठड़ा की इस विधा को अग्रसर किया।इनका जन्म विक्रमी सम्वत् १४६३ को हुआ—जिसका वर्णन उन्होंने 'तारा तन्त्र' में इस प्रकार किया है :—

पेट कूट महाकारा ते, मेरु रीचा छोड़ाय।
चौदहासत तीन वीह तीन, विक्रमी समत वणाय।
गुरु, वासरे शुक्ला सत्ती, फागुण मास कहाये।
सगण दास रचे घरते, रामसाई सुत पाये।।
अति मतिमन्द गति, गुरु जगत सुख चेताये।
किरपा भई माँ तारा री, खाहड़ा सुफल सजाये।।

तारा तन्त्र : राम साई

श्री रामसाई के उपरान्त बांठड़ा परम्परा को उनके शिष्य श्री कीर्तिदास ने सजा-संवार कर अपने पथ पर और उन्नत तथा अग्रसर किया। उनका जन्म १५११ विक्रमी को हुआ माना जाता है—जिसके प्रमाण स्वरूप उन्होंने अपने आख्यान 'किरती संदेशा' में इस प्रकार वर्णन किया है :—

पुनो सत रुद्र सम्वत, अकादसी तिथ तौंद मास।
वीरु, वासी जनमेया, एकी छाना गास।
ताहणे मिहणे भावो रे, घर छाड़े हुए दवास।
नाच गाणे वजाणें, गये गुरु रामसाई पास।।
पुरी कीती टेक गुरु री, धणी करे पुरी आस।
जुगतो मुकती सारी वरती, अन्त समै धारे सनयास।।

ये संसारी विख पटारी, जेहड़ी सुकी घास।
काल ते पचेया पाई टच्छेया, देखी बोले कीरती दास।

कीरती सवेया : कीर्ति दास

बांठड़ा नाट्य परम्परा उस समय आध्यात्मिकवाद के रूप में पनप रही थी प्रत्येक शिष्य अपनी गुरु परम्परा को तन, मन, धन से निभाने में अपने जीवन को मुक्त समझता था। कीर्तिदास के उपरान्त उसके शिष्य श्री रमण भाई ने इस परम्परा को सजा संवार कर और विकासोन्मुख किया। रमणभाई का जन्म १५६२ सम्वत् विक्रमी पौष मास चौथ तिथि शनिवार को हुआ था जैसा कि उन्होंने 'बारहा मासा' में इंगित किया है:—

पुनो सत खट्रस दो, संमत शनिचर चौथ पोह।
एको गरभ जुड़े दो, श्रीवतु वलभ जमे ओह।।
रेवती नैण ओ रमण भाई, घर मंझ सगण मनाई।
तेरहा ब्याहे अन्तर ते, रेवती नैण हुई पराई।।
बचपन विस्या जवानी आई, सिच्छया दीच्छया लैण ते।
संग कीरतीदास जाई, ता जग रंग देख्या नैण ते।।
बांठड़ा, गीत, तरंग रंग दे, जहाण झणे चेताये।
करम धरम रे पचड़े छाड़े, सद्‌गुरु राह दसाये।।

बारहा मासा : रमण भाई

रमण भाई के उपरान्त उनके शिष्य जयदेव ने बांठड़ा परम्परा को परिमार्जित बनाकर और आगे बढ़ाया। जय देव का जन्म १६२७ विक्रमी सम्वत को हुआ था। इन्होंने अपने जन्म के विषय में 'जयजोति' नामक आख्यान में लिखा है :—

सोलहा सत एक वीह सात, विक्रम संमत शुभ मगड़ बार।
यश भाई कुन्तला गरभ जून ते, सौज दूज कृष्णा लये औतार।
नाओं करणा ते जयदेव, संस्कार लये चढ़ाये।
लोभ शोभ जगता रे देख्ये, रमण भाई गुरु बणाये।।
सुणी सुणाई जगती भगती, किच्छ वी सार न पाये।
गीत रीत निरत बांठड़ा ते, जगती चेते आपू चेताये।
जस शोभ जनमा रा, भौ भै ते बचे होर बचाये।
सुघरी भगती भगवाना री, बाठड़ा रची सभी गुण गाये।।

जयजोति : जय देव

जयदेव के उपरान्त उनके शिष्य श्रुति प्रकाश ने बांठड़ा परम्परा को आगे बढ़ाया। श्रुति प्रकाश का जन्म १७०३ विक्रमी सम्वत् को हुआ था जिसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :—

एक श्रम्ह सतवार सून तीन त्रिलोकी,
कातक शुक्ला चौदशी बुधवार समत।

आत्मा लक्ष्मी शुभ गरभा ते उभरे,
जग मांह उतरे हत्थ जोड़े सिर नमत।।
पोथी पतरी उघारी के राशि नांओं बणाये,
ग्रह नच्छड़ा जोगणी, जोग बल।
श्रुति परकास नाओं दिया सजाये,
ऊंच ग्रह केन्दर ते वणे जीओण सफल।।
मरदी चरदी संसारी ते तरणे,
वेड़ी रूपे गुरु जयदेव सुभ्काये।
नट वधान गट बांठड़ा रीत ते,
यजन भजन प्रभु जस जीऊण सुफल वणाये।।

श्रुत लहरी : श्रुति प्रकाश

श्रुति प्रकाश के उपरान्त उनके शिष्य श्रीधर ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। उनका जन्म विक्रमी सम्वत् १७७५ माघ मास की अष्टमी तिथि शुक्रवार को हुआ था। जिसका संकेत उन्होंने अपने 'श्री संगार' नामक पुस्तक में निम्न प्रकार से किया है :—

एक सात सात पांज अंग ते, विक्रमी समंत वणाये।
माघ मासे काणे वारे, आठमी तिथ जन्म चेड़ाये।।
ओमदत्त कुब्जा घर श्रीधर नामे नौपत बजाये।
रास रंग बांठड़ा ढंग, गुरु सुरतिपरकास सखाये।।

श्री संगार : श्री धर

बांठड़ा परम्परा में श्रीधर के शिष्य नारायण दास सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता तथा निष्णांत माने जाते हैं— 'बांठड़ा नाट' पुस्तक की रचना करके इस विधा को अमरता तथा स्थैर्य प्रदान किया। इन्होंने बांठड़ा की परम्परा को लिपिबद्ध करके उसकी तकनीक को जिज्ञासुओं के लिये सुलभ बना दिया, अन्यथा यह विधा सिनेमा तथा पश्चिमी अनुकरण ध्वनि व प्रकाश के प्रचलन में सदा के लिये धूलि ध्वस्त हो जाती है। यद्यपि इस युग में यह विधा व परम्परा लुप्त प्राय: हो गई है, तथापि नारायण दास ने इसकी पृथक पहचान को बनाये रखकर सुरक्षित कर दिया है। इन्होंने इसे टांकरी लिपि में दो बांडो (भागों) में विभक्त किया है। 'पैहलड़ी बांड' (प्रथम भाग) में बांठड़ा की तकनीक व मंचीकरण का विधान तथा दूजी बांड (द्वितीय भाग) में नृत्य से सम्बन्धित मुद्राओं का वर्णन किया है—इसलिये पुस्तक का नामकरण 'बांठड़ा नाट' किया गया है। नारायण दास का जन्म विक्रमी सम्वत् १८२५ को मंगलवार पांचवी तिथि को भवानी दत्त के घर में हुआ—इसका वर्णन इन्होंने 'बांठड़ा नाट' के मंगलाचरण में निम्न शब्दों में किया है :—

आठ ओ दस वीह पांज जाणी के विक्रमी संमत वांचो।
भीरगु वारे तिथ पांजी भवानीदत ग्रीहे तन रांची।।
करणी-भरणी भौ सागर मंझ जनमे नरैण दास।
मुक्ति भुक्ति दिच्छया दसाये, गुरु श्रीधर कियो परकास।।

बांठड़ा नाट : नरैण दास

इन्होंने अपनी कृति बांठड़ानाट में इस विधा का बड़े मार्मिक ढंग से वर्णन किया है। इसे संसार के प्राणियों की मुक्ति का सुलभ साधन बताया है। नारायण दास लोक धर्मी नाट्य परम्परा 'बांठड़ा' के एक अति प्रसिद्ध निदेशक रहे हैं। जिन्होंने बांठड़ा विधा को मंजुल स्वरूप देकर इसे उच्च कोटि का स्थान दिलाया है। इनका मंचन समय १८५० विक्रमी से लेकर १९०२ विक्रमी संम्वत तक रहा है। इन्होंने गुरु शिष्य परम्परा को समाप्त करके इसे स्वतन्त्र तथा सर्वव्यापी लोक कला के रूप में प्रतिष्ठित किया। विक्रमी सम्वत् १८५० तक बांठड़ा की इस परम्परा में अछूतों (हरिजनों) तथा नारियों का इस मंचन विधा में आना वर्जित माना जाता था। क्योंकि यह एक विशुद्ध धार्मिक परिपाटी मानी जाती थी। इसमें केवल देवी देवताओं की झांकियाँ तथा वेद व पुराणों के श्लोक पढ़े जाते थे। अतः नारी व शूद्र जातियों का वर्णन वेदों व पुराणों के आधार पर किया जाता था। नारायण दास ने इस प्रथा व प्रचलन को धिक्कारा और बांठड़ा मंच पर नारियों व पारम्परिक कलाओं से सम्बन्धित जातियों को भी सम्मिलित किया। इस खुले वातावरण में पड़कर यह विधा पहाड़ी क्षेत्र में इतनी पनपी व प्रसिद्धि को प्राप्त हुई कि प्रत्येक पहाड़ी रियास्तों के प्रशासकों ने अपने-अपने क्षेत्र में 'ठेठर घर' (छवि गृह या थियेटर गृहों) का निर्माण करवा दिया, जिसमें वर्ष में एक बार शुभ अवसरों या उत्सवों या राजदरबारों के समय में बांठड़ा का मंचन आवश्यक हो गया। विक्रमी सम्वत् १९५० तक यह विधा पहाड़ी क्षेत्र में इस प्रकार प्रसिद्ध हो गई, जिस प्रकार मथुरा व वृन्दावन में रास लीला। नारायण दास ने ही अपने जीवन में रियास्त सुकेत, मण्डी, मांगल, भागल, कोटी, जुब्बल, रामपुर, कुमार सैन, सांगरी, दलाश, आनी, किला कांगड़ा, चम्बा चौगान, कलहूर व भज्जी इत्यादि रियासतों के राजाओं के दरबारों में बांठड़ा का मंचन करके पर्याप्त प्रसिद्धि अर्जित कर ली थी। इनकी मृत्यु विक्रमी संम्वत १९०२ में हुई थी परन्तु उनकी मण्डली परम्परागत रूप से राजदरबारों में तब तक कार्यरत रही जब तक कि पहाड़ी रियासतें समाप्त नहीं हुईं। उसके उपरान्त भी स्वतन्त्र रूप से यह विधा पहाड़ी क्षेत्रों में छाई रही। इस मण्डली की देखा-देखी में, रियास्तों के प्रत्येक नगर में भी बांठड़ा मण्डलियों की स्थापना हो चुकी थी। बाद में प्रकाशित थियेट्रीकल ड्रामों तथा शिक्षा के अधिक प्रसार ने इस को पीछे धकेल दिया। क्योंकि ये नाटक मंचन के लिये सुगम थे तथा इनमें विशेष कर्म काण्डों तथा वेद शास्त्रों व संस्कृत के उच्चारण की आवश्यकता नहीं थी। दूसरे पर्दों पर पारसी थियेट्रिकल ढंग से नाटकों का मंचन भी सरल हो गया। पार्ट याद किये नाटक खेल लिया। बांठड़ा परम्परा में मंच बहुत स्थान घेरते थे तथा कपड़े के पर्दों का प्रचलन नहीं था।

**झांकियां** बांठड़ा मंचन में झांकियों का ही आधिक्य रहता था। इनमें वेदों व पुराणों सेवे ही प्रंसग चुने जाते थे। जिनका उपदेश जनता को देना होता था। सूत्रधार वेदों व पुराणों के श्लोकों का पाठ करता था और उनका अपनी भाषा (बोली) में अनुवाद करता रहता था। ये झांकियाँ बड़े प्रयत्न से बनाई तथा सजाई जाती थीं पुनः पात्रों को संस्कृत के स्वल्प श्लोक कण्ठस्थ करवाये जाते थे। एक रात्रि को केवल तीन या चार झांकियां ही दर्शकों को दिखाई जाती थीं इन्हीं के अनुरूप दिन को मंच का आविष्कार किया जाता था।

**स्वांग** झांकियों के अतिरिक्त व्यंग्यात्मक प्रहसन (स्वांग) भी दर्शकों को दिखाये जाते थे। जैसे यदि झांकी में सत्यवान सावित्री का मंचन या प्रसंग दिया जाना है तो उसके विपरीत एक कलियुगी सती का भी स्वांग दिया जाना होता है। जैसे वह व्रत के दिन पति का चरणामृत तो लेती है लेकिन अपने पहने कपड़े पति से धुलवाती है तथा पूजन सामग्री भी पति से ही सजवाती है। इसके अतिरिक्त पति को काम-काज में व्यस्त रखकर अपने आशिक़ से रंग-रलियां भी मनाती है और समाज में पतिव्रता भी बनी रहती है।

तात्पर्य यह है कि बांठड़ा भारतीय संस्कृति व वेदों, शास्त्रों व पुराणों की कथाओं व प्रसंगों की याद दिलाता है और वर्तमान में जो उसके विपरीत हो रहा है उसका व्यंग्यात्मक रूप में वर्णन करता है जिससे बांठड़ा में लोक रुचि तथा मनोरजन की भरपूर व्यवस्था रहती थी। एक ओर ज्ञान में सरावोर करके दूसरी ओर समाज के खोखलेपन का उपहास स्वांग रूप में किया जाता था जिससे दर्शकों को ज्ञान की प्राप्ति तथा हंसी व समाज के खोखलेपन का एक साथ आनन्द मिलता था इसी से यह विधा अति लोकप्रिय बन चुकी थी। यह पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि भारतीय संस्कृति के मनीषियों ने जीवन के प्रत्येक कार्य क्लाप को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के मापदण्डों से मापने, तोलने की परिपाटी का संचालन किया है अतः बांठड़ा के आरम्भ में भी प्रतिदिन 'नव रत्न माला' के श्लोकों का पाठ तथा आदि शक्ति मां भुवनेश्वरी जगदम्बा के पूजन की परिपाटी की परम्परा स्वीकार की गई है।

**सभी ते पैहलड़ा काम ये, नव रत्न माड़ा पाठ कर।**
**धरो ध्यान माँ देवीरा, बांठड़ा सजाई ठाठ कर।।**
**नौ कन्या रे पैर पूजी, मांगो सुफल वरदाण।**
**रस बढ़े जस चढ़े, राखेयाँ आसा री आण।।**
**करे बधाण पुरा, खोले खाड़ा, पाठ दसेया नव रत्न माड़ा।।**

।।अथ नवरत्न माला।।

**ओंकारपञ्जर शुकीमुपनिषदुद्यानकेलिकल कण्ठीम्।**
**आगमविपिनमयूरी मार्यामन्तर्विभावये गौरीम्।।१।।**
**दयामानदीर्घनयनां देशिकरूपेण दर्शिताम्युदयाम्।**
**वामकुचनिहितवीणां वरदां संगीतमातृका वन्दे।।२।।**
**श्यामलिमसौकुर्मायामानदामन्द सम्पदुन्मेषाम्।**
**तरुणिमकरुणापूरां मदजलकल्लोल लोचनां वन्दे।।३।।**
**नखमुखमुखरितवीणानाद रसास्वादनवनवोल्लासम्।**
**मुखम्वमोदयतु मे मुक्ताताटङ्कमुग्धहरितं ते।।४।।**
**सरिगमपधनिरतां तां वीणासंक्रांन्तकान्तहस्तान्ताम्।**
**शान्तामृदुलस्वातां कुचभरतान्ता नमामि शिवकान्ताम्।।५।।**
**अवटुतटघटितचूलीपालीं तालीपलाशताटङ्काम्।**
**वीणावादनवेलाकम्पित शिरसं नमामि मातंगीम्।।६।।**
**वीणारवानुषङ्ग विकचमदामोदमाधुरीमृङ्गम्।**
**करुणापूरितरङ्ग कलये मतङ्गकन्यकापाङ्गम्।।७।।**
**मणिभङ्गमेचकाङ्गी मातङ्गी नौमी सिद्धमातङ्गीम्।**
**योवनवनसारंगी संगीताम्भोरुहानुभवभृङ्गीम्।।८।।**
**मेचकमासेचनकं मिथ्या दृष्टान्तमध्यमागं तम्।**
**मातस्तव स्वरूप मङ्गलसंगीतसौरभं मन्ये।।९।।**

बांठड़ा नाट : नारायण दास    ।।इति नवरत्न माला।।

**बांठड़ा का नामकरण** बांठड़ा शब्द की व्युत्पति दो शब्दों की संधि से हुई है यथा वांड़ या बाण+ थड़ा। मण्डयाली बोली में वाण् या वाड़ शब्द के दो अर्थ निकलते हैं। वाण–स्वभाव व वाक् या वाणी। थड़ा शब्द का अर्थ है—थड़ा–चबूतरा, टयाड़ा अथवा जहाँ लोक चारों ओर से आकर बैठ सकें। इन दोनों शब्दों को मिलाकर इसका अर्थ हुआ चबूतरे पर आकर वाणी का प्रयोग करना अर्थात् मंच पर आकर कुछ कहना या कला को अभिनीत करना। 'बांठड़ा नाट्' में भी इन पंक्तियों में इस ओर संकेत भी किया है :

**थड़े पर ज्ञान वाणी रा, किता जाणा बखाण।**
**लत् छुटे-पत रहे, माहणू जनम महाण।।**

बांठड़ा नाट : नरायण दास

अर्थात् मंच (चबूतरे) पर ज्ञानमयी वाणी का प्रसारण (बाखाण) करने से समाजिकों (जनता) को बुरे कर्मों से हटाकर, सत्कर्मों (पत) की ओर ले जाना ही बांठड़ा का उद्देश्य है, क्योंकि मनुष्य का जन्म महान है, परन्तु गाफिल बन कर मानव अपने अनमोल जीवन के महत्व को समझ पाने में असमर्थ रहता है। इससे सिद्ध हुआ कि मानव मन को सांसारिकता से विमुख करके ब्रह्म की ओर ले जाने का साधन ही 'बांठड़ा' है।

**मंच तकनीक** मंचीय तकनीक की दृष्टि से बांठड़ा नाटक से भिन्न है। बांठड़ा मंचन के लिये एक सौ बत्तीस हाथ भूमि की आवश्यकता होती है। नाटक मंचन की व्यवस्था से कहीं अधिक कठिन बांठड़ा का मंचन होता है। बांठड़ा में प्रतिदिन कार्यक्रम कथानक के आधार पर रंगमंच को निर्मित किया जाता है। मंच धरा पर दृश्य के अनुरूप वन, पर्वत, कुटिया, नदी, सागर तथा कृत्रिम राजमहल व वैकुण्ठधाम इत्यादि को रंग संकेतों के आधार पर निर्मित किया जाता है। एक रात्रि में अधिक से अधिक चार या पांच दृश्यों का मंचन अर्थात् दर्शकों को दिखाया जा सकता था। अतः नाटक के मंच से कहीं अधिक कठिन बांठड़ा का मंचन होता था। रंग संकेत के विषय में बांठड़ाकार ने इस प्रकार वर्णन किया है।

**नदी दूमण गढ़ ओ ठीर, खेढ़ा हवेली पैंडा दरयाओ।**
**सरग नरक मात लोक, समै समान जेहड़ा भाओ।।**
**जंगल झाखड़ जान विखड़ा, हींऊ वरखा फणयाओ।**
**जेहड़ा-जेहड़ा जीथी भाओणा, तेहड़ा-तेहड़ा तीथी दरसाओ।।**

बांठड़ा नाट : नारायण दास

अर्थात्, बांठड़ा मंचन में दृश्य के अनुकूल जैसा-जैसा भाव व दृश्य प्रस्तुत करना हो नदी, मैदान, पर्वत गढ़, किला, बंगला, पथ, दरिया, स्वर्ग, नरक मृत्यु लोक समय के अनुसार जैसा कथानक संकेत करे—जंगल, झाड़ी, घना वन, बर्फ, वर्षा व पनिहार जैसी-जैसी जहाँ-जहाँ आवश्यकता हो वैसा-वैसा दृश्य विधान बनाना बांठड़ाकार का मुख्य कर्तव्य है। उपयुक्त झांकियों और स्वांगों को दर्शाने के लिये एक सौ बतीस हाथ थड़ा या समतल धरातल आवश्यक है इस स्थान पर रात्रि को प्रदर्शन करने से प्रथम, दिन के समय में सभी दृश्य विधान पूर्ण कर लिये जाते हैं—आवश्यक वस्तुएं जोड़ी जाती हैं। रात्रि को बांठड़ा का मंचन किया जाता है और एक रात को चार या पांच से अधिक दृश्य दर्शकों को नहीं दिखाये जाते हैं। यही कारण है कि पर्दे वाले मंच ने व सैटों वाले स्टेजों ने व ध्वनि तथा प्रकाश तकनीक रंगमंचों ने बांठड़ा विधा को पीछे धकेल दिया। अब मंच व्यवस्था सरल हो चुकी है। आजकल पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों द्वारा ओपन एयर स्टेजों के आधार पर नाटक

मंचित किये जाते हैं—अतः ध्वनि व प्रकाश का युग प्रारम्भ हो चुका है। जिससे बांठड़ा विधा को क्षति पहुंची है। तात्पर्य यह है कि बांठड़ा मंचन के लिये अधिक परिश्रम तथा समय की आवश्यकता है—जैसे झांकी को सजाने के लिये पर्वत का निर्माण (कैलाश पर्वत) व नदी का निर्माण, कृत्रिम किला, गढ़, चट्टानों, वनों व पर्णकुटियों का निर्माण अधिक परिश्रम व समय की अपेक्षा रखते हैं। पुनः जैसी झांकी (दृश्य) का प्रदर्शन करना हो उसी वस्तु को निर्मित करके दर्शकों को दिखाया जाता है।

**कथानक** इसमें नाटक की भांति कथानक को दृश्यों में नहीं बांटा जाता है। पुराण या इतिहास के कथानक के किसी भाग को झांकी के रूप छांटा जाता है। पुराणों या वेदों के श्लोकों का उच्चारण करते हुए उनका काव्यमय भाषा में अनुवाद किया जाता है। जिससे दर्शक भावविभोर होकर उस पर सोचने तथा समझने पर मजबूर हो जाता है और गहन तल्लीनता में खो जाता है। बांठड़ा में जितनी भी झांकियाँ होती है, वे सभी वैदिक या पुराणों के किसी कथानक का ही एक भाग होती हैं।

**कथोपकथन या संवाद** कथानक के जिस भाग को झांकी रूप में दर्शाना हो, उसी के अनुसार पात्रों को जोड़कर पहले श्लोकों द्वारा आराधना की जाती है—पुनः पात्र भावमयी तथा काव्यमयी भाषा में संक्षिप्त संवाद कथन करते हैं और दर्शकों को पूरे कथानक का परिचय सूत्रधार स्वयं विस्तार से देता है।

**पात्र संयोजन** सूत्रधार बांठड़ा में पात्रों की सृष्टि कथानक के आधार पर करता है। बांठड़ा में पात्रों के निम्न वर्ग होते हैं :—

१. **देवता वर्ग :** ब्रहमा, विष्णु, शंकर, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, जगदम्बा।
२. **देवाश्रित भक्त वर्ग :** प्रहलाद, धन्न जट, श्रवण कुमार इत्यादि।
३. **दानव वर्ग :** कंस, रावण, जालन्धर, वृकासुर, त्रिपुर इत्यादि।
४. **ऋषि या सन्त वर्ग :** विशिष्ठ, विश्वामित्र इत्यादि ऋषि कुल या पौराणिक प्रसिद्ध महात्मागण इत्यादि।
५. **नृप वर्ग :** पुराण या इतिहास प्रसिद्ध कोई राजा।
६. **मन्त्री या भृत्य वर्ग :** इसमें राजा के सभी कर्मचारीगण इत्यादि दर्शाये जाते हैं।
७. **चोर वर्ग :** इसमें नास्तिक, चोर, लुटेरे इत्यादि दर्शाये जाते हैं।
८. **आभिजात्य वर्ग :** ब्राहमण, महाजन इत्यादि।
९. **शुद्र या स्वपच वर्ग :** इसमें निम्न श्रेणी के तथा समाज द्वारा तिरस्कृत पात्र रखे जाते हैं।
१०. **पशु पक्षी वर्ग :** इसमें पुराण प्रसिद्ध पशु तथा पक्षी दर्शाये जाते हैं।

**चरित्र-चित्रण** उपरोक्त पात्र वर्गों के अनुसार चरित्र का चित्रण निभाना आवश्यक होता है। जिसका अभ्यास सूत्रधार, धृति, वृत्ति, कृति द्वारा पात्रों को झांकी से पूर्व ही करवा देता है।

**परिधान/वेषभूषा** पात्रों व चरित्रों के अनुकूल परिधान या वेषभूषा का वर्णन बांठड़ाकार ने इस प्रकार किया है :

**१ देवता वर्ग:-**
**कुण्डड़ केश मुकट सजाये, अस्त्र-शस्त्र जथा जोग वणाये।**
**जनेऊ, रत्न, गैहणे धारे, वाकें-वाकें संगार फणाये।।**
**जथा जोग फ्याड़ा वोले। समझो वाठड़ा मंझ देवता रचाये।।**

'कानों में कुण्डल, सुन्दर केश उस पर मुकुट धारण किये यथा योग्य। जैसे-जैसे जो देवता अस्त्र-शस्त्र धारण करे व धारण करवाये, जनेऊ, पिताम्बर (पटका) व रत्न-जटित आभूषण युक्त और सुन्दर श्रृंगार किया जाये और जो उचित व मीठी वाणी से वार्तालाप करें तो समझ लो कि बांठड़ा मंच पर देवतागणों की रचना की गई है।'

२ देवाश्रित भक्त वर्ग :–
तिलक छाप सिर बाम्बरू, हत्थ सिमरनी माल।
धोती, पड़तन, जनेऊ, परणा, हत्थ मुंदड़ी उजड़ा भाल।।

'माथे पर तिलक की छाप' सिर पर लहराते केश, हाथ में सुमिरन हेतु रुद्राक्ष माला, धोती या अंगोछा और कंधे पर तौलिया व हाथ में मुद्रिका तथा उज्जवल मस्तक देवाश्रित भक्त वर्ग की वेषभूषा है।'

३ दैत्य (दानव) वर्ग :–
भयावणा मोहरा चमकारी हाख, पशुमुखी सींग वघारी दन्दराड़।
अध-नंगा वदन, सींगची, पांख मुकट, भावटावाड़ हड्डमाड़ा, फयाड़ा चिंगराड़।।
उचट चाड, भौचड़ दराड़ बण धराये। देखी रसुम्वा चढ़े समझो दैन्त आये।।

'भयानक मुखड़े और चमचमाती आखें, हिसंक पशुओं जैसे मुख, सींग व बाघ जैसी दन्तमाला अर्ध-नग्न शरीर और पक्षियों के पंखों का मुकुट, बिखरे बाल, हड्डियों की माला और हाथी की चिंघाड़ जैसे शब्द उच्चारण उछल-कूद कर चलना, धरती हिलाना मानों भूचाल आया हो, वनों, वृक्षों को उखाड़ते और उजाड़ते हुए चलना जिनको देखते ही रोंगटे खड़े हो जायें तो समझ लो कि बांठड़ा के मंच पर राक्षसी पात्रों का चरित्र उभारा जा रहा है।

४ ऋषि वर्ग :–
विशाला केश मुकुट त्रिपुण्ड तिलक, रुद्राख कण कुण्डड़, गले ओई माड़ा
भूजमाड़ और धोती पटका, नमत मूछ लटके दाढी बाड़ा।।
शान्त व कान्त जपे हरि नामा। शरधा चढ़े आये समझो ऋषि सिद्धाकामा।

'भारी बालों का खड़ा मुकुट बांधे त्रिपुण्ड तिलक लगाये रुद्राक्ष के कर्ण कुण्डल धारण किये तथा रुद्राक्ष की माला गले में पहने तथा रुद्राक्ष की ही भुजमालायें कसे, धोती और पटका धारण किये हुए लम्बी तथा नीचे झुकी मूछें व लम्बी-लम्बी लटकी हुई दाढ़ी के बाल संजोये, शान्त मन से सौंदर्य पूर्ण हरि का नाम जपते हुए जिनको देखते ही मन में श्रद्धा उत्पन्न हो जायें तो समझो कि बांठड़ा मंच पर सिद्ध पुरुष, ऋषि, मुनि पधारे हैं।

५ नृप वर्ग :–
राज मुकुट पगड़ी सुघरी, कमर खंजर रेबी पजामा।
जड़त खड़ाऊ बांके नयना, विराजे सिंहासन सुकृत श्रीमाना।।
वजीर सैनापत्ति अंग रखे, भरा दरबार जय जय कारा।
बजे साज, बधाई महाराज, फयाड़े भरगाज सभा हंकारा।।

सुगठित पगड़ी पर राज मुकुट धारण करके, कमर में खंजर डाले, रेबदार पाजामा पहने और रत्न जटित खड़ाऊ धारण करके सुन्दर नयनों वाला' सिंहासन पर बैठ कर कार्य में रत श्रीमान्, पार्श्व में मन्त्री और सेनापति और अंगरक्षकों सहित भरे दरबार में जय-जयकारों के स्वर गूंजते हुए, साज-बाज सहित बधाइयों को लेते हुए, जिनका

स्वर रौबिला हो, सभा में गूंज से भयकार उपजे तो समझो बांठड़ा मंच पर नृप का चरित्र-चित्रण किया जा रहा है।

६. भृत्य वर्ग :–

**चौड़ा लिलाट, दरबारी टोपी, जुते कमरबन्द, चौड़ी गठी छाती।**
**तेज चाल हत्थ भाले उची मुच्छे, रौविले बोल सेवा मनभाती।।**

जिनका चौड़ा माथा और सिर पर दरबारी टोपी या साफा, पांव में सुदृढ़ जूते, कमरबन्द (पेटी) चौड़ी, गठी हुई छाती, द्रुतगति, हाथ में भाले (बर्छे) या अस्त्र-शस्त्र ऊंची उभरी हुई मूच्छें। जिनका चेहरा रौबदार हो और राज्य के सेवा-कर्म में लगे हों उसे भृत्य वर्ग जानना चाहिये।

७. चोर या शतिर वर्ग :–

**हिरखालू, डरावणी हाखे, आधा नंगन शरीर।**
**ढका मुखौटा डोर हथ, समझो आया चोर शातिर।।**

जिनकी आंखें ईर्ष्या से भरी हुई हों और भंयकर सी लगें और तन पर आधे ही वस्त्र धारण किये हुए हों। हाथ में लाठी डोर तथा आधा मुंह ढका हो तो समझो कि यह किसी शातीर व चोर का अभिनय है।

८. आभिजात्य वर्ग :–

**छैड़ सुडौल मुख सिर मलमली पाग, लांड़ची हाखे मन चंचल अनुराग।**
**धन-दौलत के फ्याड़े रटे, समझो आया महाजन पुराग।।**
**रुंड मण्ड तिलक छापें, मुख उच्चरे राम-राम।**
**परोपकार के फ्याड़े बोले, समझो आये ब्राह्मण निष्काम।।**

सुन्दर और गठित चेहरे तथा शीश पर मलमल की पगड़ी धारण किये हुए लालच भरी आंखों से देखते हुए जिनका मन, धन के प्रति अर्पित हो और सदैव धन सम्पत्ति की बातें करें तो समझो सूदखोर महाजन (वणिक्) आ गया।

सफाचट सिर व शिखा रखे, माथे पर तिलक की छाप दिये और मुख से राम-राम का उच्चारण तथा परोपकार की बातें करने वाले हों तो समझो कि निष्काम भावना वाले ब्राह्मण का अभिनय है।

९. शूद्र या स्वपच वर्ग :–

**तन झगा सिरे मेखड़ी, हाथ सोठा जंघा नंगी।**
**नमत नैन सुले चाले, चमार कोली चनाल भंगी।।**

तन में केवलमात्र एक कमीज और शीश पर चिथड़ा (मेखड़ी) बांधे, हाथ में डण्डा लिये और टांगों से नंगे, आंखें झुकी हुई हों तो समझो ये निम्न वर्ग के, शूद्र या स्वपच हैं।

१०. पशु पक्षी वर्ग :–

**डाड़ पात पर बसेरा करे, इत-उत उड़ै तन ढापे फंग।**
**चार पात्रे वणे विचरे, बासे घासे वणे नसंग।।**

वांठड़ा नाट : नरायणदास

ये जो वृक्षों पर उड़ते विचरते फिरें और उसी पर बसेरा करें और पंखों से तन ढके रहे वे पक्षी हैं। जो चार पैरों से वन-वन घूमें, घास पात खायें और निडर भ्रमण करें वे चारपाये पशु हैं इनका अभिनय इस प्रकार समझें।

**प्रकाश व्यवस्था** बांठड़ा में .. उस काल में दीप स्तम्भों व मशालों का प्रयोग किया जाता था। इस विषय में बांठड़ाकार ने इस प्रकार वर्णन किया है :–

**थारक थाम पांज हाथ बणाय। दीया बड़ा खमार ते लया रचाय।।**
**लमी चीर-चीर के सेरों तैल पाया चावड़ सेरों दाणे तो गांठ मराय।।**
**ता ऊपर आग दे खाड़ा दे सजाय। परयाशा थीर फड़े मैं दिओ समझाय।।**

'प्रथम दीप स्तम्भ जो पांच हाथ ऊंचा हो, नियमानुसार बना लेना चाहिये। उसके बाद एक बड़ा दीपक जिसमें चार सेर तेल डाला जा सके कुम्हार से तैयार करवा लें इसके उपरान्त एक कपड़े की लम्बी पट्टी तैयार करें और उसके बीच चावल व सरसों के दानों को बांध दें। बांधने के उपरान्त उसमें तेल रचा कर अग्नि प्रज्ज्वलित करें जिसके प्रकाश से पूर्ण बांठड़ा मंच जगमगा उठेगा।ऐसा मैंने (नरायण दास ने) पहले ही समझा दिया।'

**मंचन-पूर्वसामग्री चयन** बांठड़ा मंचन हेतु जिन वस्तुओं की झांकी में आवश्यकता होती है उन वस्तुओं के चयन का सूत्रधार को पूर्ण परिचय होना चाहिये जिससे समय पर दृश्य विधान हेतु कोई कमी नहीं आनी चाहिये अन्यथा उस समय भटकना पड़ेगा। इसके लिये बांठड़ाकार निम्न निर्देश करते हैं :—

**साहण पलागें काठ शैहतीर। पोशाका चदरु मुकट चन्द्रिका अबीर।।**
**पड़ता सड़ता शेल वरक होर रंग। मकोड़ परानण बठावा कवंग।।**
**कदू पेठा चीथड़े गैहणे संगार। चौकी संघासण माला तीर तलवार।।**
**रथ संज वंज गदा घंटी घड़ियाल। वर्तन सर्तन कपड़ा जथा जोग संभाल।।**
**जथा सामग्री सोची सोठी राखे पास। कज्याण चूके मौके पर कहे नरैण दास।।**

'भान्ति-भान्ति के वृक्षों की बड़ी टहनियाँ, बेलें, (वन के दृश्य के लिये) लकड़ी (शहतीर), सब प्रकार के पहनावे, दुपट्टे, मुकुट, चान्द्रिकायें, सिन्दूर या सुर्खी, पूजन-समग्री (अक्षत, पुष्प इत्यादि) शेल (विहूल का रेशा), अभरक और भान्ति-भान्ति के रंग, मकोल (सफेद मिट्टी), परानण (लाल मिट्टी), बठावा (देवदार का पराग), कदू, पेठा, कपड़ों की लीरें, सब प्रकार के गहने (श्रृंगार हेतु), चौकी (बड़ा उत्कीर्णत्व वाला पटड़ा), सिंहासन (जड़ित), बर्छा धनुष, तीर और तलवार, रथ, संज (घंटी, थाली, आचमन) गदा, घंटी, आरती और घड़ियाल, सब प्रकार के घरेलू बर्तन, कपड़ा इत्यादि को यथायोग्य (जिसकी जहाँ आवश्यकता हो) संभाल कर रख लें। सूत्रधार को भली-भान्ति सोच समझ कर यह वस्तुएं एकत्र कर लेनी चाहियें। जो सूत्रधार अनजान (कज्याण) होता है वह समय पर काम आने वाली वस्तुओं से अनभिज्ञ होता है और समय पर मंच पर काम आने वाली वस्तुएं न मिलने पर उन्हें अपनी भूल याद आती है। यह नरायण दास का कथन है।'

**आदि शक्ति पूजन व त्रिदेव आराधना** रंगसभा या मंच के बन जाने पर उसपर सर्वप्रथम विधि विधानानुसार जगदम्बा भुवनेश्वरी व मातगीं माता का 'नवरत्न माला' का पाठ तथा पूजन-अर्चन करके रंग सभा

को प्रतिष्ठित किया जाता है। तदुपरान्त कार्यक्रम आरम्भ होता है और तीन देवताओं की झांकी तथा आराधना होती है। उनसे प्रेतबाधा तथा वृद्धि के वरदान की कामना की जाती है अर्थात् वर माँगा जाता है।

**अरण्यदेव आराधना** बांठड़ा मंचन में सर्वप्रथम जंगल की झांकी व आराधना की जाती है। उस काल में इस क्षेत्र में बड़े-बड़े भयानक जंगल हुआ करते थे। जनसंख्या बहुत कम हुआ करती थी। इससे भूत-प्रेत वणशीरा (वन देव) अथवा जंगली देव से लोग बहुत त्रस्त रहते थे। वे किसी भी समय शुभ कार्यों या मनुष्यों के जमघट व मूकता भंग करने पर बाधा डाल सकते थे। अत: इस बाधा निवारण हेतु बांठड़ा में सर्वप्रथम जंगली (अरण्य देव) की आराधना का विधान है।

जंगली (अरण्य देव) को एक विकृत या भूत रूप में अथवा दानव के रूप में सजाया जाता है। उसके तन पर भान्ति-भान्ति की बेलें, वनस्पतियां, पशुचर्म व पक्षियों के पंख सजाये व लटकाये जाते हैं। लोग देखते ही भयभीत हो जाते हैं— बांठड़ा के इस दृश्य में लोग बच्चों को बड़े संभाल कर तथा गोद में छुपा कर रखते थे। महिलायें भी प्राय: डर जाया करती थीं। वास्तविक रूप से बांठड़ाकार प्रेत बाधा व छाया, डाकिनी, शाकिनी के उत्पात से बचने के लिये वणशीरा या जंगली देवता की आराधना करते थे। रंग सभा (मंच) पर आते ही सूत्रधार सहित सभी पात्र निम्न प्रकार से उसकी स्तुति आरम्भ करते है :—

**जंगल में मंगल करता रे, सुख सम्पति से झोली भरता रे।**
**अगड़ बम बम बम**
**रक्षी भक्षी तेरो नाम रे, पूरण करदे म्हारे काम रे।।**
**अगड़ बम बम बम।**
**म्हारी जड़ता प्रभु हरदे, भरी सभा में मंगल कर दे।**
**अगड़ बम बम बम।।**

जंगली (अरण्य देवता) के विषय में लोक श्रुति प्रचलित है कि आज भी सघन वनों में जंगली (अरण्य देवता) जिसको लोक भाषा में 'वणशीरा' कहते है, जो मानव उस वन से अकेले आता-जाता है उसका पूरा नाम लेकर पुकारता है जो इस नाम को सुन लेता है (अपना नाम सुनकर) उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। सिरमौर, मण्डी के ज़िला चच्योट व किन्नौर के वियावान जंगलों में वहां के निवासियों के द्वारा इस देवता (वणशीरा) का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए उस काल में बांठड़ाकार अपने बांठड़ा को सफल बनाते हेतु सर्वप्रथम उसकी आराधना करके वरदान प्राप्त करते थे।

आराधना करने के उपरान्त सूत्रधार जंगली (वन देवता) से प्रश्न करता है कि महाराज आप हमारी प्रार्थना पर आराधना से प्रसन्न होकर आये हैं— क्या आपका मन हमारी प्रार्थना से प्रसन्न है? यदि हैं तो क्या आप अपना परिचय देंगें? इस पर जंगली (अरण्य देव) उत्तर देते है :—

'हम तीन भाई हैं, एक छोटा नन्द, एक बड़ा नन्द और एक मैं जंगली हूँ— तेरी वाणी सुनकर इस रंग सभा में प्राप्त हुआ! हे सूत्रधार! जो तेरे मन में हो— वह मेरे पास कथन कर।'

**सूत्राधार** हे जंगली महाराज! साष्टांग प्रणाम! हम इस रंगसभा में लोकमंगल हेतु बांठड़ा रचा रहे हैं। पात्र बुद्धि के हीन है। इसलिये महाराज इन्हें बुद्धि का वरदान देकर सफल करें!

**जंगली**— हे सूत्रधार! मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं तुम जाकर गणपति की आराधना करो।

जंगली के उपरोक्त कथन के अनुसार सूत्रधार गणपति की आराधना करता है। गणपति की झांकी में श्रीगणेश को एक चौकी पर विराजमान करके उनके दोनों ओर ऋद्धि और सिद्धि हाथ में चौंर तथा अमृत कलश लिये खड़ी दिखाई जाती है। बांठड़ाकार सूत्रधार गणपति की आराधना करते हुये द्वादश नाम मन्त्र (श्लोक) के उपरान्त निम्न गीत गाता है :—

> **आरती, मनायो मेरे देवा री, लाज राखो मेरी सेवा री।।**
> **मनायो मेरे देवा री।**
> **मंगल करण विघ्न हरण एकदन्त, ऋद्धि सिद्धि की पिटारी खोल दयावन्त।**
> **थाड़ी अर्पण मेवा री, मनायो मेरे देवा री।।**
> **मन को तू ज्ञान से भर दे, जड़ता को तू मूल से हर ले ।**
> **जड़त झड़ी थेवा री, मनायो मेरे देवा री।।**

जब गणपति की स्तुति समाप्त हो जाती है तो प्रसन्न होकर गणपति जी सूत्रधार से वार्तालाप करते है :—

**गणपति** – हे सूत्रधार! तूने जो मेरी आराधना की वह किसलिए? मैं कैलाश पर्वत पर बैठा अपने माता-पिता से तानमृत कर रहा था तेरी वाणी सुनकर सभा में प्राप्त हुआ। हे सूत्रधार! जो बात तेरे मन में है वह मेरे पास कथन कर।

**सूत्रधार**– हे मंगलकारी गणपति जी महाराज! हमारे यहाँ जनमनोरंजन व जनकल्याण हेतु बांठड़ा रचा गया है।पात्र बुद्धि के हीन है। इसलिये महाराज उन्हें बुद्धि का वरदान मिलना चाहिये।

**गणपति** – मुझे इतनी सामिथ्य नहीं है। अतः तुम जाकर सरस्वती मां की आराधना करो।
गणपति की आज्ञानुसार सूत्रधार बुद्धि की दात्री माता सरस्वती की आराधना करता है:—

> **तू वरदायिनी जगत जननी, रंग सभा में आ, आ, आ।**
> **रंग सभा में आयो मेरी माता, रंग सभा में आ, आ।**
> **कृपा कर हम पे माता भक्त तेरे दीन हैं।**
> **सुध बुद्ध की मा तू दाती, हम तो बुद्धि हीन हैं।**
> **सुरति तू वन के माता हमारे मन में समा जा ।**
> **तू वरदायिनी जगत जननी रंग सभा में आ, आ।**
> **(आगे की पंक्तियां लुप्त हैं।)**

वन्दना व आराधना के उपरान्त सरस्वती रंग-सभा में उपस्थित होती है। सरस्वती माता को हाथ में वीणा, पुस्तक, माला, धारण किये हुए रस्सियों के सहारे स्वर्ग से उतारा जाता है। रंग-सभा में उपस्थित होने पर देवी सरस्वती जी नृत्य करती हैं। उसके उपनान्त सूत्रधार श्लोकों द्वारा सरस्वती की आराधना करते हुए साष्टांग प्रणाम करता है—इस पर सरस्वती जी सूत्रधार से पूछती हैं :—

हे सूत्रधार! मैं स्वर्ग में बैठी अपने माता-पिता से तानमृत कर रही थी। तेरी वाणी सुनकर सभा में प्राप्त हुई। हे सूत्रधार! तेरे मन की जो इच्छा है वह मेरे पास कथन कर।

**सूत्राधार –** हे बुद्धिदायिनी माँ! हम लोककल्याण, धर्म के उदय व पाप के क्षय के लिये बांठड़ा रचा रहे हैं। पात्र, बुद्धि के हीन हैं। इसलिये उनको बुद्धि का वरदान मिलना चाहिये।

**सरस्वती –** तथा अस्तु।

इतना कह कर सरस्वती जी अन्तर्धान हो जाती हैं। इसके उपरान्त मंच (रंग सभा) में मंगलाचरण शहनाई तथा गीतों द्वारा होता है।

**कान्ह-चन्द्रावड़ी नृत्य** कान्ह-चन्द्रावड़ी (चन्द्रावली) नृत्य बांठड़ा का मुख्य आकर्षण है। चार चन्द्रावड़ियां, एक कान्ह (कृष्ण) बांठड़ा में प्रत्येक झांकी (दृश्य) के उपरान्त गीत तथा नृत्य प्रस्तुत करते हैं। बांठड़ाकार 'नारायण दास' ने सर्व प्रथम १८७० वि० के लगभग महिलाओं को बांठड़ा में स्थान दिया था इससे पूर्व महिलायें रंगसभा में वर्जित समझी जाती थीं। तब से अन्त तक सन् १९४५ तक बांठड़ा मण्डल में महिलायें आती रहीं। पहले बांठड़ा में स्त्रियों के लिये पुरुष पात्र (लड़के) ही अभिनय करते थे।

कान्ह चन्द्रावड़ी (चन्द्रावली) के नृत्य के उपरान्त झांकियों का क्रम आरम्भ होता है। झांकियों में वेद या पुराण के किसी एक अंग का प्रदर्शन होता है। इसमें संस्कृत के मन्त्र, श्लोक तथा उनका हिन्दी अनुवाद भी होता है। झांकियों का प्रदर्शन समय १५ मिनट से आध घन्टा तक होता है क्योंकि इनका कथानक वेदों, पुराणों व इतिहास के किसी एक अंग से लिये होता है—इसलिये इसका पृथक् से साहित्य नहीं रचा गया है।

**मंचन समय** बांठड़ा का मंचन समय नव सम्वतसर के नवरात्रे व शरद् नवरात्रे तथा पंचमीष्मी पूर्णिमा होता है। बांठड़ा साहित्य में शक्ति लीला का वर्णन मिलता है। जिसमें जगदम्बा माँ की ८१ (एकासी) लीलायें होती थीं, परन्तु यह साहित्य अभी तक सम्पूर्ण नहीं मिल पाया है। इसके अन्वेषण की कोशिश की जा रही है। शक्ति लीला का एक अंश 'ब्रह्म मोह' या 'त्रिशक्ति संगम' प्राप्त हुआ है जो नाटक की भान्ति दृश्यों में विभाजित है तथा काव्यमय सम्वाद में है जिसकी एक झलक इस प्रकार है—

'संसार में शक्ति ही सर्वश्रेष्ठ पूजनीय व माननीय सत्ता है। ब्रह्मा, विष्णु व महेश भी उसी शक्ति के द्वारा सृष्टि का पालन, संहार तथा निर्माण करते हैं। जब ब्रह्मा, विष्णु व शिव की उत्पत्ति हुई तो उनमें चेतना शक्ति नहीं थी, प्रकाश का उद्भव नहीं हो पाया था। अतः आदि शक्ति ने अपने से प्रकाश को बिखेरते हुये उन्हें चेतना शक्ति देने का प्रयास किया। किन्तु उनके सामने वही आदि शक्ति मातृरूप, भगिनी रूप, पत्नि रूप व पुत्री रूप से आई। जिससे ब्रह्मा व शिव तो उसकी तथा उसके द्वारा दी गई सलाह का पालन करने में असमर्थक रहे। जिससे वे अपूर्ण देव तथा भगवान विष्णु जिन्होंनें आदि शक्ति की विनयपूर्वक सभी बातें मान लीं उन्हें पूर्ण देव की उपाधि मिली। वे ही सृष्टि का पालन करने में सर्मथ देवता माने गये। तभी वो बार-बार अवतार धारण करके सृष्टि क्रम चलाते हैं।

इसमें वर्णित कुछ सम्वाद इस प्रकार है।

**ब्रह्मा की आखों में किरणों का प्रकाश**

**ब्रह्म** ओह! यह क्या अन्धकार में प्रकाश—यह क्या रूप! सृष्टि या विनाश?

**शक्ति** भद्र! तुम मुझे नहीं जानते और ना ही जान सकते हो। जब जान जाओगे तो मेरी सत्ता पहचान जाओगे।

ब्रह्म	मैं आदि पुरुष हूँ—क्या मैं इतना मूर्ख हूँ?
शक्ति	तो बूझो मैं कौन हूँ?
ब्रह्म	शून का एक बबूला।
शक्ति	शून का बबूला आज ही, आया जो तुमसे टकराया।
ब्रह्म	तो फिर क्या बवाल है—जो मेरे लिये मायाजाल है?
शक्ति	सुनो! मैंने तुम्हें जन्म दिया इस लिये तेरी जननी पालनहारी हूँ। तुम्हारी पूजनीय महतारी हूँ।
तुम्हें यह जीवन बखशीस है—यह मेरी आशीष है।
ब्रह्म	यह मुझे स्वीकार नहीं।
शक्ति	आंखें मूदें रहो। तुम्हें कुछ भी देखने का अधिकार नहीं।

(अन्तर्धान)

**दूसरी किरण का पड़ना**

उसी रूप में ब्रह्म की दाहिनी ओर बैठना।

ब्रह्म	तुम कौन हो? साथ बैठ कर भी मौन हो।
शक्ति	सृष्टि में अन्धकार गहन है। एकाकीपन से बचाने आई, जो तुम्हारी बहन है।
ब्रह्म	तुम्हारी उत्पत्ति और तुम्हारा काम?
शक्ति	जहाँ से तुम्हारी प्रस्तुति वहीं से मेरी उत्पत्ति।
ब्रह्म	अन्धकार और शून्य सृष्टि की सूरत है। इसलिये तुम्हारी क्या जरूरत है?
शक्ति	जब तक सृष्टि में जीवन नहीं रहेगा।
तुम्हें आदि पुरुष कौन कहेगा?
ब्रह्म	मेरा और तुम्हारा क्या सम्बन्ध?
शक्ति	भ्राता व भगिनी का पावन बन्ध।
ब्रह्म	मुझे यह भी स्वीकार नहीं।
शक्ति	तुम्हें भी सृष्टि रचने का अधिकार नहीं।

(आदि शक्ति का अन्तर्धान होना)

**(पुनः तीसरी किरण)**

आदि शक्ति का वाम अंग में विराजमान होना।

ब्रह्म	तुम फिर प्रकट और मौन, वामांग में विराजी तुम कौन?
शक्ति	अब मेरे तन पर तुम्हारा अधिकार है, तुम्हारी सेवा करना मुझे अंगीकार है।
ब्रह्म	शून्य व अन्धकार ब्रह्माण्ड का अंग हैं, तो मेरे लिये तुम्हारा क्या संग है?
शक्ति	सृष्टि का क्या रंग हो यह विचारा नहीं होगा।
यदि आप सर्जन करें तो मुझ बिना गुजारा नहीं होगा।
ब्रह्म	मुझे बिल्कुल स्वीकार नहीं।
शक्ति	आपको भी सृष्टि में जीवन शक्ति देने का अधिकार नहीं।
तुम्हारे जीवन में बहारों का खात्मा होगा, एकाकीपन में पलने वाला तुम्हारा आत्मा होगा।
(आदि शक्ति का अर्न्तधान होना और ब्रह्म में जड़ की स्थिति उत्पन्न होना,

अब शक्ति तीसरी किरण का प्रकाश फेंक कर ब्रह्म की गोद में बैठ जाती है

**ब्रह्म** अरे तुम कौन! आंचल की शरण लेकर भी मौन?

**शक्ति** शक्ति के तात्विक संगम के अनुरूप हूँ, तुम्हारे द्वारा उत्पन्न तुम्हारा ही एक रूप हूँ।
वंश की परम्परा की पहचान हूँ। स्पष्ट रूप में तुम्हारी ही संतान हूँ।

**ब्रह्म** तेरा रूप यह छल व जाल है, आदि पुरुष को छले अजब कमाल है।

**शक्ति** कल्पित सृष्टि रचा करो, न होंगे स्वप्न साकार,
कल्प पर कल्पान्तर होगें, देखते रहो सदा अन्धकार।

(इसके बाद शक्ति ब्रह्मा को जड़ रूप देकर सृष्टि संचालन न कर सकने का श्राप दे अर्न्तधान हो जाती है।अब झांकी का अगला भाग दिखाया जाता है जिसमें क्षीर सागर में भगवान विष्णु को शेष शैय्या पर विराजमान दर्शाया जाता है। वे जड़ व अचेत अवस्था में हैं। उनमें चेतनता लाने के लिये शक्ति उन पर पहली किरण बिखेरती है—और सिर पर वरद्हस्त रखती है।

**विष्णु** मैं क्या देख रहा हूँ। क्या मेरे मन का साया है, जो साकार बन कर मेरे सामने आया है।

**शक्ति** वत्स! मैं न तेरे मन का साया हूँ। न छल और न माया हूँ।
तेरी उत्पति में सहायक जन्म दाता हूँ। इस लिये मैं तेरी माता हूँ।

**विष्णु** महा मातृ! मेरा साष्टांग प्रणाम स्वीकार करो, इस ब्रह्माण्ड की निर्जनता व जड़ता हरो।

**शक्ति** तथा अस्तु! तुम फलो और फूलो, बहारों व उमंगों के झूले झूलो।
डोले मही दु:ख से नहीं तुम उसके कर्तार बनो।
पीड़ा हरो सब जीवों की प्राणी जन के भर्तार बनो।

**विष्णु** जननी! क्या आप इस कार्य में सहारा दोगी, डूबती जगती बच जाये क्या वह किनारा दोगी?
समर्थ हूंगा मैं तभी यदि सफल वरदान होगा।
कर्ता कर्म का मैं हूंगा, जग में तुम्हारा नाम महान् होगा।

**शक्ति** तथाअस्तु ।
माटी, जल, पवन, तेज द्वारा शून्य में पर्याण करो।
दो चेतनता सृष्टि को, गीत सौंदर्य निर्माण करो।

**विष्णु** दूंगा सृष्टि को चेतनता, पंच तत्वों के सहयोग से।
कर्मगति ही धर्म होगी, जीव मुक्त होगा कर्म योग से।।
जो पायेगा कर्म भेद को, ऊंचा उसका आसन होगा।
नाना सुख भोगेगा जगती के तीन लोक में शासन होगा।

**शक्ति** सर्वमंगल! मुझे तुम से यहीं स्वीकार था।
इस तरह का वार्तालाप ही दरकार था।।
(इसके उपरान्त शक्ति का अन्तर्धान हो जाता है।)

क्षणिक अन्धकार के बाद पुन: ज्योति का प्रस्फुटन और शक्ति का विष्णु के दाहिने पक्ष में बैठना

**विष्णु** यह क्या माया का नर्तन है। रूप धारने में क्षणिक परिवर्तन है ।

**शक्ति** सृष्टि स्नेह हेतु मैं तुम्हारी भगिनी की सूरत हूँ।

क्योंकि सृष्टि प्रेम में बन्धे, इस लिये इसकी जरूरत है।।
कहो क्या स्वीकार है?

विष्णु कल्याणी! मुझे कब इन्कार है।
परस्पर भ्रातृभाव से जगत की नींव टिकेगी।
अन्यथा जगत की आव, माटी के भाव बिकेगी।

शक्ति जैसा मुझे मानोगे वैसा ही रूप धरुंगी।
जैसा मुझसे चाहोगे, तुम्हारे मन के अनुरूप करुंगी।

विष्णु मैं स्नेह का प्रतीक व भाई-चारे में शरीक मानता हूँ।
मुझे सृष्टि निर्माण में योग दोगी, मैं भली-भान्ति जानता हूँ।

शक्ति एवम् अस्तु! मैं उसे पूर्ण करुंगी, तथाऽस्तु।

**कुछ क्षणों के बाद पुनः दिव्य किरण का प्रकाश विष्णु की आंखों पर पड़ता है।
प्रकाश के साथ शक्ति विष्णु के वामांग में बैठती है।**

विष्णु यह कौन सा रूप अनोखा है। यह सत्य है या केवल धोखा है।।
आपके यहाँ बैठने का क्या प्रयोजन है। आपके द्वारा होगा वह क्या आयोजन है?

शक्ति सृष्टि प्रणय का प्रसार ही मेरा आयोजन है। सृष्टि की उत्पत्ति करना ही मेरा प्रयोजन है।
जीवन मेरा तुम्हारे साथ, संग होगा। धर्म कर्म कार्य में, तुम्हारे साथ अभिन्न अंग होगा।

विष्णु यद्यपि यह प्रणय योजना सही है, मैं समझा नहीं जो बात तुमने कही है।

शक्ति ब्रह्म के हृदय में सृष्टि रचने की कल्पना उत्पन्न होगी।
पुष्प वाण का जन्म होकर, नर-नारी से प्रणय लीला सम्पन्न होगी।

विष्णु प्रणय लीला का अर्थ क्या होगा?

शक्ति नर-नारी संयोग से, उत्पत्ति में मानव सर्मथ होगा।
फूले फले यह जगती तल, मस्त बहारें झूमेंगी।
मन में रतिमय भाव जागें-प्रणय लीला तब चरण चूमेंगी।

विष्णु ऐसे में मुझमें और तुझमें क्या भेद रहेगा। पवित्रता भंग होगी, जिसका मुझे खेद रहेगा।
पवित्रता भंग होगी, भेद अभेद हो जायेगा। गुरु बनेगा सेवक, मन में भारी खेद जे जायेगा।

शक्ति सोच लो समझ लो, प्रश्न कार्यसिद्धि का है। सृष्टि संचालन चेतनता तथा वृद्धि का है।।
कर्ता का कुछ अर्थ नहीं यदि कार्य सिद्ध नहीं।
मृत संसार क्या पालोगे, जब तक जीवन समृद्ध नहीं।।

विष्णु सृष्टि संरचना के हर काम में, मैं सदैव तैयार हूँ।
सब करुंगा सब धरुंगा, चेतनता जग का वफादार हूँ।।

शक्ति करो संचार जीवन का, जीवन में शक्ति भर दो।
जीवों का जीवों से मोह हो, सृष्टि में अनुरक्ति भर दो।।

विष्णु यह भी मुझे मंजूर है, सहयोग तुम्हारा ले, आशा भरपूर है।।

क्षणिक अन्धकार के साथ शक्ति का लुप्त हो जाना और पुन: प्रकाश किरणों का आगमन, विष्णु का आंखें खोलना और शक्ति का भगवान विष्णु की गोद में बैठ जाना। उसके बाद यहाँ ऐसा दृश्य है :—

**विष्णु** यह तुम्हारा कौन सा वेश है। जो इस कदर मेरे पेश है।
छलना है एक बार छलो बार-बार छलावा क्या?
बात करनी है एक बार करो बार-बार भुलावा क्या?

**शक्ति** छल विडम्बना मोह द्वंद्व की, रंग बिरंगी होरी होगी।
प्रकृति नाना रूप धरेगी, माया के हाथ जग की डोरी होगी।
यह छलावा नहीं सृष्टि की बनावट है। माया सृष्टि का कारण होगी, यह जगत की सजावट है।

**विष्णु** कौन चरित्र उभरेगा और क्या उसका काम होगा,
कौन युक्ति हल होगी, कौन दृश्य अभिराम होगा?

**शक्ति** मोह का होगा विस्तार, ममता हृदय सिंचेगी। मिटेगा एकाकीपन, वात्सल्यता सबको खिंचेगी।

**विष्णु** जगमगा उठेगी सृष्टि, यदि तुम्हारा हाथ होगा।
वृद्धि होगी जगत की, उसमें मेरा भी साथ होगा।

**शक्ति** एवमस्तु। तथा अस्तु।
सिद्धि वृद्धि मय वह घर होगा, वात्सल्यता जहाँ सम्पन्न होगी।
धन्य धन्य वह वंश होगा, कन्या जहाँ उत्पन्न होगी।

इसी सम्वाद के साथ शक्ति का अन्तर्धान हो जाता है। तीसरी झांकी में शिव ध्यान मग्न होते है उनकी आंखों पर दिव्य प्रकाश की किरणे पड़ती हैं—आंखें खोलने पर शक्ति शिव के सिर पर वरद हस्त रखे दिखाई देती है।

**शिव** ये छाया तू मुझे बता दे, तेरा गुण कर्म क्या है?
इस भ्रान्ति मुझे जता कर, तुम्हारा असली मर्म क्या है?

**शक्ति** वत्स! मैं माया नहीं ममता की चिंगारी हूँ।
उत्पत्ति में तुम्हारी सहायक, अत: तुम्हारी महतारी हूँ।
कांया नहीं मांया नहीं, ममता की पिटारी हूँ।
जिसने तुम को चेतन किया, जीवन की चिंगारी हूँ।

**शिव** मैं कैसे विश्वास करुं कि तुम छाया नहीं।
अब तक इस प्रकार का दृश्य मेरी दृष्टि में आया नहीं।

**शक्ति** वत्स! तुम अभी तक अचेत थे, जब से चेतना पाई है।
तभी मैंने तुम्हें ममतामयी अपनी सूरत दिखाई है।

**शिव** समझा यह चेतनता का अवशेष है, अब तुम्ही बताओ, मुझे क्या आदेश है।

**शक्ति** ममता के बल पर वत्स, सृष्टि करो संसार की।
पूजनीय सदा जननी रहे, नींव रखो व्यवहार की।

**शिव** कर्तव्य पथ पर सहाई होना, तुम्हारा कर्म होगा।
उसका ही अनुशरण करना मेरा धर्म होगा।

जंग खायेगी तलवार, बिना किसी म्यान के।
कल्याण मेरा हो नहीं सकता, बिना तुम्हारे ध्यान के।

**शक्ति** आर्शीवाद मेरा इतना, क्लेश जगत के काटोगे।
जगत में प्राणी मात्र को, जीवन तुम ही बांटोगे।

**शक्ति का अन्तर्धान होना कुछ क्षणों के उपरान्त पुनः किरण की शंकर के मुख पर आना पड़ना और शक्ति का शिवशंकर के दाईं ओर बैठना।**

**शिव** अबकी बार क्या आदेश है, जिसे मैं करुं वह क्या संदेश है।

**शक्ति** सृष्टि में भ्रातृ भगिनी स्नेह, सर्वोपरि उपचार होगा।
भातृभाव का ही जगत में मुख्य संचार होगा।

**शिव** सृष्टि पालन में भ्रातृभाव की क्या जरूरत होगी।
समझा नहीं इस रूप में आने की क्या सूरत होगी?

**शक्ति** स्नेह के बिना सृष्टि में कल्याण नहीं होगा।
जिसमें कल्याण न हो वह तो जहान नहीं होगा।
भ्रात भगिनी का सम्बन्ध, पवित्र बन्धन होगा।
घृणा की चोट पर, विलेपन के लिये चन्दन होगा।

**शिव** जिसे स्वीकारा जननी उससे पवित्र क्या होगा।
इस रूप में जो उभरे वह चरित्र क्या होगा।
पंच तत्व से जो चालित हो, अलग प्रपंच जाना नहीं।
द्वेत के इस भाव को मैंने पवित्र माना नहीं।

**शक्ति** सृष्टि के उत्पति संगम की, कथा न पहचान पाओगे।
त्रस्त जब जगती होगी, व्यथा न उसकी जान पाओगे।

**शक्ति अन्तर्धान हो जाती है। कुछ ही क्षणों के उपरान्त पुनः प्रकाश का प्रकट होना और शक्ति का बायें अंग की और बैठना।**

**शिव** इस ओर आपके बैठने का क्या स्थान है। जिससे मुझे युक्ति मिले, वह कौन सा ध्यान है?

**शक्ति** बिना रति क्रिया के न जगत व्यवहार चलेगा।
एकाकी पन में खोयेगी जगती न यह संसार फलेगा।

**शिव** मेरे लिये यह बात अनजानी है। इसलिये मैंने यह बात नहीं मानी है।
रति क्रिया रमण में सर्वथा पवित्रता भंग होगी।
दूषण भरेगा भूषण में स्वच्छन्दता अपंग होगी।

**शक्ति** सृष्टि के तरण मरण में, कमी न आनन्द पाओगे।
जब चाहोगे आनन्द इसका, जी भर पछताओगे।

**शिव** इस क्रम में आकर पवित्रता का अपमान होगा।
इतिभाव के पचड़े में, जगत में व्यवधान होगा।

**शक्ति** कमी न तुम्हारे काल में रति सुख करीब होगा।
बरसो तरसो, तीन लोक में न आनन्द नसीब होगा।

इस प्रकार शिव को शक्ति अभिशाप देकर अर्न्तधान हो जाती है— यही कारण बताया जाता है कि सती के कुण्ड में प्रवेश के समय शिव प्रणय के लिये तीन लोक में तरसे थे। पुनः प्रकाश की एक किरण उभरती है— शक्ति शिव की गोद में बैठ जाती है।

शिव आंचल में विराज कर तुम्हारा संदेश क्या है।
दया की पात्र बनकर, यह सुन्दर वेष क्या है।

शक्ति वात्सल्य भाव बिना जगत सर्वथा सूना होगा।
करुणा स्नेह घट जायेगा, घृणा व क्रीड़ा का भाव दूना होगा।

शिव विशेष आवश्यकता नहीं सृष्टि में मोहजाल बढ़ाने की।
मोह सदा कम करो यह मुक्ति जीवों को पढ़ाने की।

शक्ति सृजन करोगे जैसा तुम, वैसा जगत व्यवहार होगा।
घृणा का बीज बोकर, कैसे पर पर प्यार होगा।

शिव यह तर्क भरपूर नहीं, इसलिये मुझे मंजूर नहीं।

शक्ति एवमस्तु, तथाअस्तु।
**वात्सल्य के इस भाव को जीवन भर तरसोगे।**
**अति दुःख भोग कर सूनी आंखों से बरसोगे।**

इसी सम्वाद के साथ शक्ति अर्न्तधान हो जाती है।

उसके उपरान्त तीनों देवताओं को उनके विश्व (ब्रह्माण्ड) के कर्त्तव्य के विषय में कार्य विभाजन का आदेश देते हुए आदिशक्ति कहती है— तीनों देवताओं पर पुनः किरण का प्रकाश होता है।

शक्ति ब्रह्म! मैं तुम में चेतना का संचार करती हूँ।
धर्मध्वजा फहरी रहे, अतः प्राणों का भण्डार भरती हूँ।

ब्रह्म योग्य करो ऐसा मुझे सृष्टि पूर्ण कर सकूं।
और उसमें सात्विक ब्रहत्व भर सकूँ।

शक्ति ब्रह्म! फूलेगी फलेगी सृष्टि, सभी भावों का संचार होगा।
पूर्ण होते भी अपूर्ण रहोगे, तुम्हें सर्वथा अन्धकार होगा।

तुमने ब्रह्म! मातृभाव प्रणयभाव स्नेह भाव से मुख मोड़ा है। इसलिये सृष्टिक्रम के नियमों को आनन्दभाव सुख छोड़ा है। तुम खुली आंख से सृष्टि का रंग नहीं पा सकोगे। कल्पान्तर के बाद केवल जल शून्य अन्धकार का संग पा सकोगे। किरण लौट जाती है और शक्ति का रूप अर्न्धधान हो जाता है।

**दूसरी बार किरण विष्णु के मस्तक पर पड़ती है और शक्ति प्रकट हो जाती है।**

विष्णु शक्ति स्वरूपे मुझे आज्ञा का बखान करो।
सृष्टि रचने में मैं सक्षम बनू ऐसा वरदान भरो।

शक्ति तुमने समस्या की सब पहेलियों को सुलझाया है, इसलिये तुमने सृष्टि पालक का पद पाया है। तुम सब भावों से सम्पूर्ण हुए, सृष्टि में अवतार धारण करने की कला में परिपूर्ण हुए।

**विष्णु** — इसमें मेरा क्या कार्यभार होगा, सर्जन में सफल बनूं इसका क्या विचार होगा।

**शक्ति** — तुम्हारे सृष्टि पालन व संचालन द्वारा प्राणियों का उद्धार होगा।
जो तुम्हारा कर्म से भजन करेगा उसका बेड़ा पार होगा।

**शक्ति लोप हो जाती है, अब शक्ति द्वारा शिव पर किरण का प्रकाश होता है। शिव आंखें खोलते हैं।**

**शिव** — शक्ति स्वरूप आपने मुझे सक्षम बनाया, साष्टांग प्रणाम है।
जो मुझे आज्ञा हो वह कौन सा कार्य अभिराम है।

**शक्ति** — शिव! तुमने केवल त्याग के क्षेत्र में नाम कमाया है।
परन्तु सृष्टि रचने में जो आवश्यक था, वह समझ नहीं पाया है।

**शिव** — मैंने तुम्हें प्रथम नहीं पहचाना, अब तो युक्ति बताईये।
जिससे सृष्टि का निर्माण व पालन हो ऐसी जुगति बताईये।

**शक्ति** — तुम पालनकर्ता व भर्ता हो यह रूप शंकर कहलायेगा।
दूसरा शैव रूप तुम्हारा सहारक व भयंकर माना जायेगा।

**शिव** — इसके अतिरिक्त मुझ से कौन सा काम सिद्ध होगा।

**शक्ति** — तुम्हारा साधक रूप प्रसिद्ध होगा, जगत में भोले कहलाओगे।
अतः अपने वरदानों द्वारा बार-बार छले जाओगे, तुमने रति भाव को भी दुतकारा है।
इस लिये दर-दर भटकना स्वीकारा है, तुम्हें सती का वियोग सहना होगा।
उसकी प्राप्ती को दर-दर भटकते रहना होगा।

**अब किरण अन्धकार में बदल जाती है और शक्ति अन्र्धधान हो जाती है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, तीनों चेतन होकर अपने-अपने सृष्टि संचालन के कार्य में व्यस्त हो जाते हैं। बांठड़ा में एक रात्रि को ही इन चार झांकियों को प्रदर्शित किया जाता है।**

इस प्रकार की अन्य एकासी लीलाओं का वर्णन मिलता है—परन्तु अभी ये कथानक उपलब्ध नहीं हो सके हैं।

उपरोक्त कथानक अठाहरवीं सदी के उपरान्त के हैं क्योंकि इनके सम्वादों में पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों की तकनीक अपनाई गई है। इसमें कही उर्दू भाषा के शब्द भी प्रयोग किये गए है। इस प्रकार बांठड़ा विधा अपने आप में एक पूर्ण विधा है इसके अन्वेषण शोध के पर्याप्त अवसर हैं। □

छाया : बीरबल शर्मा

लोकनाट्य बांठड़ा में नाई का स्वांग

जन्म जयन्ती (29 नवम्बर) पर विशेष

छाया : गरिश एस. पालमपुर

# स. सोभा सिंह की कला एक जीवंत धरोहर

किशोरी लाल वैद्य*

श्रीहरगोबिन्दपुर (ज़िला गुरदासपुर) में 29 नवम्बर 1901 को जन्मे स. सोभा सिंह ने अपनी 86 वर्ष की लम्बी आयु के दौरान अपने चित्रों द्वारा जैसा परिचय दिया है, वह उन्हें अपने युग के महान् कलाकारों की कोटि में स्थापित करता है। सोभा सिंह वास्तव में एक सिद्धहस्त चितेरे ही नहीं थे, उनकी कला उनके चिन्तनशील मानस की प्रतिच्छवि भी रही।

स. सोभासिंह को यदि जन्मजात कलाकार कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। बचपन में ही वे मिट्टी और रेत पर रेखाएं खींचते, मूर्त-अमूर्त आकार-आकृतियां बनाते। उन्हें किसी कलाकार का सम्पर्क नहीं मिला। पिता स. देवासिंह फौज में सर्वेयर थे। पिता की कठोर प्रकृति के कारण बाल सोभासिंह पितृ-स्नेह से वंचित रहे। चित्रकला की ओर बच्चे का जो रुझान था, उसे किसी ओर से भी प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ। पिता तो उस रुचि के ही विरुद्ध थे। सोचते, यह बालक बड़ा हो कर आजीविका भी अर्जित नहीं कर पायेगा।

स्कूली पढ़ाई में बच्चे का मन नहीं था, सो मात्र पांचवीं कक्षा के बाद वहां से हट गया। उसके बाद का बचपन वातावरण की उपेक्षा में कटने लगा लेकिन ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, चित्रकारी में रुचि बढ़ती गई। चौदह वर्ष की उम्र हो गयी। उन दिनों अमृतसर में एक औद्योगिक स्कूल चलता था। उसमें प्रवेश लिया और वहीं से कला एवं शिल्प में एक वर्ष का कोर्स पूरा किया। इस कोर्स के पूरा करने से बाल कलाकार में आत्म-निर्भरता की ललक जाग उठी। सत्रह वर्ष की आयु में पिता का साया जाता रहा। मां अच्छरा देवी के देहान्त का सदमा तो छः वर्ष की अबोध बाल आयु में ही उठाना पड़ा था।

सन् 1923 में बैसाखी के दिन सोभासिंह का बीबी इन्दर कौर से विवाह हुआ। सांसारिक सुख कलाकारों के भाग्य में कम ही होते हैं, अधिसंख्य का जीवन गरीबी में कट जाता है। स. सोभासिंह ने कलाकार के साथ जुड़ी दीनता की तस्वीर को झुठलाया है। कलाकारों में कला एक दैवी देन है।

*शैलजा, संजौली, शिमला-१७१००६ (हि.प्र.)

दार जी इस ईश्वरीय देन को सुरक्षित रखने और उसके सम्वर्द्धन के लिए आजीवन कड़ा श्रम करते रहे। जो लोग उनकी समृद्धि से ईर्ष्या करते, वे नहीं जानते थे कि ससम्मान आजीविका के पीछे दार जी की 18 घंटे प्रति दिन की अनवरत साधना थी।

सामान्य प्रेक्षकों की बात तो क्या, कलाकार व कलापारखी भी दार जी के जिन चित्रों को देख कर सराहने लगते और उन्हें हर दृष्टिकोण से सम्पूर्ण पाते, वे स्वयं दार जी की अपनी दृष्टि में अधूरे होते और उन पर वे लगातार घंटों काम करते। ऐसा तो हर बार ही हुआ कि जब दार जी किसी के लिए चित्र बना रहे होते तो उस प्रक्रिया में वे महीनों उस चित्र को नहीं दे पाते थे जब कि ऊपरी तौर पर देखने में वह कृति एकदम पूरी दीखती। एक बार दार जी ने विख्यात रंगमंचीय कलाकार नोराह रिचइर्स का रूपचित्र बनाया। जब वह ईज़ल पर ही था, श्रीमती रिचइर्स ने उसे देखा और पाया कि चित्र पूरा हो चुका है। वह नहीं चाहती थी कि कलाकार उसमें कूची और रंगों का और अधिक प्रयोग करें। लेकिन दार जी को यह कैसे मंज़ूर होता ? उन्होंने घंटों क्या, दिनों-महीनों तक उस पर और काम किया।

दार जी के लिए वास्तव में कोई भी चित्र पूरा नहीं था। पुराने चित्रों पर पुन: रंग कूची चलाया करते थे। जिन चित्रों को उन्होंने एकाधिक बार आलेखित किया है, उनमें भी कुछ न कुछ सम्वर्द्धन हर बार हुआ है। अत: दार जी की चित्रांकन — प्रक्रिया के बारे में यह पूछना कि उन्हें एक चित्र बनाने में कितना समय लगता है, निरर्थक हो जाता था। एक चित्र-सृजन ने जाने उन्हें कितनी बार कितने क्षणों के लिए बांधा, इसका गणित तो स्वयं कलाकार के पास भी नहीं था। दार जी ने 22 अगस्त 1986 को महाप्रयाण किया था लेकिन जीते जी अपनी वृद्धावस्था के बावजूद उन्हें इस बात का एहसास नहीं था कि अन्तिम घड़ी इतने निकट है। उनके स्टूडियों में ईज़ल पर गुरु रविदास का चित्र टंगा था। और उनके पौत्र हृदयपाल सिंह के अनुसार वे कृष्णजी के चित्र पर पुन: काम करना चाहते थे।

दार जी को 'सोहनी —महीवाल' के चित्र ने बड़ी ख्याति दी। सर्वप्रथम उस अप्रतिम चित्र की रचना सन् 1937 में हुई थी। प्रेमी युगल की उस छवि ने पांच पानियों के देस पंजाब के प्रेमी युवा हृदय को अपनी तूलिका का जैसा स्पर्श दिया है, वह अपनी प्रस्तुति में बेजोड़ है। वह कलाकार की अपनी कल्पना तथा निजी अवधारणा का सृजन थी। जन-मानस ने उसे जैसे स्वीकारा है, उससे उसकी लोकप्रियता का एक मानदण्ड स्थापित होता है। यद्यपि दार जी को कला-जगत् में अमरत्व प्रदान करने के लिए मात्र सोहनी-महीवाल की कृति ही पर्याप्त होती लेकिन अपनी कला-यात्रा के दौरान उन्होंने सोहनी-महीवाल, हीर रांझा, उमर खैयाम जैसे अन्य प्रेम-चित्र तो बनाए ही, अपने अधिकांश समय का उपयोग अवतारों, संतों, महापुरुषों आदि के चित्र बनाने में ही किया। गुरु नानक देव जी के उनके एक रूपचित्र ने इतनी लोकप्रियता अर्जित की कि उसकी एक लाख से भी अधिक प्रतियां हाथों-हाथ बिक गयीं। जनमानस ने कल्पना से सर्जित इस रूपचित्र को ही गुरु महाराज की सही छवि स्वीकार किया है।

दार जी ने अपने जीवन-काल के दौरान लगभग 2000 चित्रों का प्रणयन किया। इस विस्तृत प्रक्रिया में रूपचित्र, पोस्टर, पैनल आदि सभी कुछ सम्मिलित रहे। उन्होंने सिक्ख धर्म के सभी दस

गुरुओं तथा अन्य महान् सन्तों के रूपचित्रों का अंकन किया। एक कारण यह भी है कि वे सिक्ख सम्प्रदाय के लोगों में विशेष रूप से लोकप्रिय हुए। लेकिन दार जी एक मानवतावादी चिन्तक थे। उनके लिए एक सम्प्रदाय की चार दीवारी को लांघना अनिवार्य था। रूपचित्रों की ही श्रृंखला में उन्होंने भगवान कृष्ण, राम, ईसा मसीह के चित्रों का भी आलेखन किया। दार जी अतीत से ही सम्बद्ध रहे हों, ऐसा नहीं था। उन्होंने अपने युग के उन महापुरुषों व नेताओं के चित्र भी अंकित किये जिन्होंने भारतीय जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। ऐसे चित्रों में महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, भगतसिंह, श्रीमती इन्दिरा गांधी आदि के चित्र देखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त दार जी ने किन्हीं ख्यातिलब्ध व्यक्तियों के चित्रों को भी अंकित किया जैसे स. प्रताप सिंह कैरों, डॉ. एम. एस. रंधावा, डॉ. यशवंत सिंह परमार आदि। दार जी से लोगों ने अपने प्रियजनों के स्मारक चित्र भी बनवाये। रूपचित्रों में पृथ्वीराज कपूर (आवक्ष-मूर्ति) नोराह रिचर्ड्स आदि की छवियां भी उल्लेखनीय रहीं।

दार जी की कला का जो आकर्षण है, उसके पीछे उनके दार्शनिक चिन्तन की पृष्ठभूमि थी। दार जी एक मनस्वी कलाकार थे। वे धर्म, संस्कृति, इतिहास, दर्शन, काव्य, कला के एक गम्भीर अध्येता थे। उनका स्टूडियो ही उनका अध्ययन एवं शयन कक्ष भी था। उनकी शैय्या के पास कुछ ऐसे ग्रंथ व पुस्तकें करीने से रखी रहती थीं जिन्हें वे वर्षों से देश-विदेश से खोज-खोज कर एकत्रित किये हुये थे। हर दिन कुछ घंटों का अध्ययन उनकी दैनिक चर्या में सम्मिलित होता। थोरियो, इमरसन, खलील ज़िब्रान, कृष्णामूर्ति आदि चिन्तकों की कृतियों को बड़ी लगन से पढ़ते थे।

किसी भी देश की कलाकृतियों को बड़े चाव से देखते थे। कला उनकी नज़रों में जनमानस का एक संस्कार था और इस संस्कार को और समृद्ध करने के लिए वे आजीवन तपस्वी बने रहे। गुरू नानक हों या कृष्ण, राम हों या ईसा, रविदास हों या गांधी, दार जी ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में जिन अवतारों व सन्तों की तस्वीरें बनाई, वे उसी संस्कार के प्रेरणास्वरूप थीं जो एक सूक्ति संदेश के रूप में उनके कलापूर्ण आवास की दीवार पर भी अंकित हो गया है —'ग्रो मोर गुड'। इसी में परोपकार की भावना से प्रेरित उनके कला-धर्म का उद्‌घोष हुआ है। □

# हिमाचल की साठोत्तरी हिन्दी कहानी

डॉ० प्रत्यूष गुलेरी*

स्वतंत्रता के पश्चात् कहानी जिन घटनाओं से प्रभावित हुई उन्हें लेकर कहानी विधा के क्षेत्र में नई कहानी और पुरानी कहानी कहकर भेदान्तर किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ देश विभाजन, देशवासियों में मोहभंग की स्थिति, यथार्थवादी दृष्टि इन सारी स्थितियों से उत्पन्न विसंगतियों ने कहानी को निश्चय ही प्रभावित किया और परिणाम-स्वरूप नई कहानी का प्रतिफलन हुआ। यह सर्वविदित है कि साहित्य और समाज का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। कभी साहित्य समाज को गति प्रदान करता है तो कभी नए मूल्यों की स्थापना द्वारा वह समाज में नयी शक्ति का संचरण करता है। नयी कहानी भी मात्र अपनी परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप सत्ता में नहीं आई, उसके पीछे एक बृहद् परम्परा है। साठोत्तरी कहानी, संचेतन कहानी, असहज कहानी, अकहानी, सहज कहानी, समान्तर एवं समकालीन आदि कहानी नाम से कई आन्दोलन साहित्य में उठे और मिटे हैं। ये सभी नाम और आन्दोलन कहानी के प्रयोगधर्मा होने का परिणाम हैं। हमारा अभिप्राय यहां मुख्य रूप से साठोत्तरी हिन्दी कहानी से है क्योंकि उपर्युक्त सारे नामकरणों और वादों के बावजूद आज की कहानी से साठोत्तरी हिन्दी कहानी का नाम बखूबी से चल निकला है। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सभी स्तरों पर देश की परिस्थितियों ने करवट बदली है। अपेक्षित स्थितियों के कारण अविश्वास और आश्चर्य का उत्पन्न होना स्वत: स्वाभाविक था। अधिकतर कहानी लेखक अपनी परिस्थितियों से टक्कर ले रहे हैं। आज की कहानी का केन्द्रीय पात्र रुग्ण है, स्वस्थ नहीं। पीड़ा और अकेलेपन ने मनुष्य को निराश कर दिया है।[1] कहना न होगा कि इन्हीं संवेदनाओं को साठोत्तरी कहानी के कहानीकारों ने वहन किया है। समसामयिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप जो विघटित और अव्यवस्थित जीवन सामने आया उसने निश्चित रूप से कहानी के रूप, स्वर और दिशा को बदला। साठोत्तरी कहानी अपने समय के अनेक आयामों से जुड़ी हुई है। इसमें विवशता आक्रोश, भयंकर व्यंग्य, उपहास और विद्रोह का स्वर मुखर हो उठा है। निराशा व्यथा का कारण भी समसामयिक परिस्थितियां ही हैं, साथ ही शिल्पगत नवीनता भी कहानी में आई।[2]

आज की कहानी में अहं का स्वर भी उभरा है। कहानी का विषय, शिल्प और भाषा आदि सभी में नयापन और परिवर्तन दृष्टिगत है। रचनाकार को संरचना के स्तर पर तीन रूपों में संघर्ष करना पड़ रहा है— अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष, निजी चेतना को मानवीय संवेदना से सम्बद्ध करने के लिए आत्मसंघर्ष एवं मानव समस्याओं की अनुभूति प्राप्त करते हुए अपने जीवनानुभव को व्यापक और तीव्रतर बनाने का संघर्ष।[3] अतएव आज की कहानी द्वन्द्व में जन्म लेती है, संदेह में बढ़ती है और बिम्बात्मक रूप में दृष्टि प्रदान करती है। बौद्धिकता ने इसे दुरुहता का दोष आरोपित किया है और

*प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धर्मशाला (हि. प्र.)

ऐसा होने से इसकी संप्रेषणीयता को भी कई स्तरों पर आघात पहुंचा है। इस कहानी में विसंगतियों, विडम्बनाओं, विरोधाभासों, अर्थहीन आदर्शों को यथार्थ के धरातल पर वाणी मिली है। यही नहीं निकट सम्बन्धों में तनाव, बदलाव, टूटन, अनास्था आदि सी कई स्थितियां तीव्रता से इसमें आई हैं। आज की कहानी बिना किसी लाग लपेट के यथार्थ को व्यंजित करने में सहायक सिद्ध हुई है। साठोत्तरी कहानी के सातवें, आठवें और नवें दशक में नए आन्दोलनों का शोर शराबा हुआ। इस कहानी को बदले हुए भावलोक की कहानी कहा जा रहा है जो अपने परम्परागत रूप से बहुत आगे निकल आई है। इसमें चरित्र की अपेक्षा स्थितियां प्रमुख और महत्वपूर्ण घटक हैं।[4] साठोत्तरी कहानी में क्रमबद्धता कोई अर्थ नहीं रखती अपितु यह चेतना प्रवाह की पद्धति के रूप में उभरती है। अधिकतर कहानियों में कथाहीनता की प्रवृत्ति भी देखी गई है। यहां यह स्पष्ट कर देना प्रासंगिक प्रतीत होता है कि इस लेख में हिमाचल की साठोत्तरी हिन्दी कहानी के संदर्भ में अध्ययन को 1985 तक विवेचना का विषय बनाया है। यह अलग बात है कि साहित्यकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से साठोत्तरी कहानी को स्त्तरोत्तरी, समान्तर और अब नवम् दशक की संभावना नाम से अलंकृत किया है। हिमाचली हिन्दी कहानी के संदर्भ में इन वादों का बंधकर कोई खास अनुपालन किया गया प्रतीत नहीं होता किन्तु वे सभी प्रवृत्तियां यहां के कथाकारों में सहज प्राप्य है जिनका सहजदर्शन हमें राष्ट्रीय कहानी धाराओं में देखने को मिलता है।

**हिमाचल की हिन्दी कहानी: पृष्ठभूमि** साठोत्तरी हिमाचली हिन्दी कहानी पर कुछ कहने से पूर्व हिन्दी कहानी के परिप्रेक्ष्य में हिमाचल के योगदान को रेखांकित करना उचित जान पड़ता है। हिन्दी कहानी के उद्‌भव एवं विकास में शीर्षस्थ एवं बहुचर्चित कथाकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी और यशपाल हमारी इसी माटी की उपज हैं। सन् 1911 ई. में हिमाचल की प्रथम हिन्दी कहानी "सुखमय जीवन" की रचना गुलेरी जी ने की थी। इस तरह उन्हें हिमाचल का आद्य हिन्दी कहानीकार माना जाता है। यही नहीं "उसने कहा था" कहानी आज के संदर्भ में भी उतनी ही नई प्रतीत होती है जितनी कि आज की नई कहानी। यशपाल सन् 1939 से लेकर साठोत्तरी कहानी के उदय तक निरन्तर कहानी को पल्लवित एवं पुष्पित करते रहे। 'खच्चर और आदमी', 'भूख के तीन दिन' शिल्प की दृष्टि से अत्याधुनिक कहानियां हैं। यह दु:ख की बात है कि हिमाचली हिन्दी कहानी के विकास में शोधकर्ता और इतिहासकार स्वर्गीय योगेश्वर गुलेरी, क्षेमेन्द्र गुलेरी, मस्तराम कपूर और देस राज डोगरा का ज़िक्र तक करना भूल जाते हैं। योगेश्वर जी की कहानियां 'नया समाज' के माध्यम से प्रकाशित हुई हैं। इनकी लिखी चौदह कहानियां उपलब्ध हुई बताई जाती हैं।[6] 'जीवन का संगीत' और 'रामजी की मरजी' 1950 ई. में विश्व कहानी प्रतियोगिता के अन्तर्गत (हिन्दुस्तान टाइम्स द्वारा आयोजित) पुरस्कृत हुई हैं। विष्णुप्रभाकर ने योगेश्वर जी की कहानियों को कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से आधुनिक कहानियां माना है। कदाचित् अन्तर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में उनकी दोनों प्रेषित कहानियों का पुरस्कृत हो जाना उनकी असाधारण प्रतिभा और योग्यता का प्रमाण है। क्षेमेन्द्र जी की कहानियां उनके संपादकत्व में प्रकाशित जागृति मासिक में छपी हैं। श्री देसराज डोगरा की कहानियां भी 1951–60 के बीच पत्र-पत्रिकाओं में छपी देखने को आई हैं। डोगरा जी की पहली कहानी लखनऊ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'नया पथ' मासिक में "सत्यनारायण की कथा" छपी। 1959

में 'टेकू' जिसमें ग्रामीण आंचल के सिपाही की व्यथा का चित्रण हुआ है 'जन साहित्य' में प्रकाशित हुई है। डोगरा जी तब से आज तक हिन्दी कहानी में लिखते चले आ रहे हैं और छपते भी। मस्त राम कपूर की कहानियों का भी 1960 से पूर्व छपने का विवरण प्राप्त होता है। अत: साहित्य इतिहास की दृष्टि से इन सब कथाकारों का भी अभीष्ट योगदान है। यशपाल जी ने तो उत्कर्ष पत्रिका के सन् साठ के बाद के कहानीकारों का विशेषांक संपादित कर नए हस्ताक्षरों को मंच भी प्रदान किया था।

हिमाचल की साठोत्तरी हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि की चर्चा में 1951 ई. में एक प्रयोगधर्मी कथासंग्रह श्री सत्येन्द्र शर्मा के संपादन में 'बर्फ के हीरे' नाम से प्रकाश में आता है।[7] इसमें हिमाचली परिवेश के ग्यारह कथाकारों की बाईस कहानियां संकलित हैं। कई जगह बर्फ के हीरे का प्रकाशन 1959 लिखा भी देखने में आया है। इस कथा संकलन को साठोत्तरी हिन्दी कहानी का यशस्वी पूर्वज कहा जा सकता है। इस कथा संग्रह के अनन्तर कथा संकलनों के संपादन का एक दौर चल निकलता है। आलोच्य कथा संग्रह में 'कब्र की मिट्टी' (खेमराज गुप्त), 'अन्तर्द्वन्द्व' (बंशीधर जिज्ञासु), 'हम स्वर्ग से बोल रहे हैं' (राम कुमार काले), 'कोई क्या समझे' (रत्न सिंह हिमेश), 'धरती के उस पार' (चन्द्रमणि बशिष्ठ) की कहानियां सुगठित शिल्प, सुनियोजित कथ्य एवं प्रयोगात्मक दृष्टि से रचित रचनाओं का श्रेष्ठ प्रयास है।

**हिमाचल की साठोत्तरी हिन्दी कहानी: सातवां दशक** सामान्यत: साठोत्तरी/हिमाचली/हिन्दी का उद्भव किशोरी लाल वैद्य द्वारा लिखित कथा संग्रह 'सफेद प्रतिमा काले साये' से माना जा सकता है। यह कथा संकलन 1963 में प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में अधिकतर प्रतीकात्मक शीर्षकों के ताने-बाने से बुनी कहानियां हैं। 'अधूरा चित्र', 'एक कोण तीन रेखाएं' और 'सफेद प्रतिमा काले साये' कहानियां पारिवारिक विघटन और सम्बधों के तनाव-बदलाव की कहानियां हैं। सन् 1962 ई. में श्री कृष्णकुमार नूतन की आदर्श कहानियां कथा संग्रह प्रकाशित होता है जिसमें सामाजिक परिवेश की आठ कहानियां हैं। 'यादगार' तथा 'रस कलश' में कलाकार के मन की कुंठा दर्शायी गई है। नूतन की 'रस कलश' कहानी को लखनऊ से अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत भी किया गया है।

1966 ई. में महिला कथाकार श्रीमती सन्तोष शैलजा का प्रथम कहानी संग्रह 'जौहर के अक्षर' प्रकाशित हुआ। इसे प्रयोगवादी कथा संग्रह की अपेक्षा परम्परायुक्त जीवन चरितों की शैली में लिखा गया संग्रह माना गया है।[8] 'बिछुड़ी राहें' शीर्षक से 1966 ई० में 'जनसाहित्य' में शैलजा की पहली कहानी छपी थी। 'लपटों में फूल', 'जब फूल खिल उठे' अच्छी कहानियां हैं। 1970 में प्रकाशित धर्मशाला से प्रोफेसर कुलभूषण कायस्थ का 'घिराव' सातवें दशक की कहानी का एक सशक्त कथा-संग्रह है। प्रो. कायस्थ की इसमें 12 कहानियां हैं। 'घिराव' कहानी नारी मन की मन:स्थिति को आधार बनाकर लिखी गई कहानी है। 'इन्सानियत का खून' विघटित मानव मूल्यों का विश्लेषण करती है। कई कहानियों का अन्त निरुद्देयता की स्थिति में छोड़ा गया है।

सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में रमेश चन्द्र के कहानी संग्रह 'पगध्वनियां' में 'केक्टस के फूल' और

'अकुलाए नयन' कहानियां समकालीन साहित्य से मेल खाती हैं। 'कैक्टस के फूल' में मानसिक ऊहापोह है जबकि 'एकदिन एक शाम', 'सौंदर्य की खोज', 'मूर्ति बोलती है' कहानियां यात्रा कथा के रूप में पढ़ी जा सकती हैं। रमेश चन्द्र की कुछ कहानियां सौंदर्य की खोज की कहानियां हैं।[9] सन् साठ से सत्तर तक हिमाचल की हिन्दी कहानी में अनेक नाम आ जुड़ते हैं, जिनकी कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में छपती हैं और आकाशवाणी से प्रसारित होती हैं। इनमें रत्नसिंह हिमेश, डॉ० पीयूष गुलेरी, सुन्दर लोहिया, ज़िआ सिद्दीक़ी, खेमराज गुप्त, देस राज डोगरा, डॉ० प्रत्यूष गुलेरी, सी. आर. बी. ललित, प्रो. गौतम व्यथित, सागर पालमपुरी, डॉ० नीलमणि उपाध्याय, कृष्णकुमार नूतन, सुदर्शन वसिष्ठ प्रमुख हैं। इन कहानीकारों ने हिमाचल के कथा साहित्य को काफी अच्छी कहानियां देकर समृद्ध किया है।

सातवें दशक में सुन्दर लोहिया का नाम कहानी विधा में अच्छे कहानीकारों में लिया जा सकता है। लोहिया ने अपनी कहानियों में अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों में वैयक्तिक आदर्शों की पराजय-जनित कुंठाओं का चित्रण किया है। 'बीहड़', 'खून का रिश्ता', 'कोलतार' इनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं। पत्र-पत्रिकाओं में डॉ० पीयूष गुलेरी का 'बड़े फेर का लैहंगा' (सैनिक समाचार), देसराज डोगरा की 'यह है दोस्ती' (जगत मासिक) डॉ० प्रत्यूष गुलेरी की 'विद्युत दीप और पतंगे', 'ढलती सांझ', 'यादों का स्तूप, 'मंडराते मेघ' (वीर प्रताप, हिन्दी मिलाप, विश्वज्योति), सी. आर. बी. ललित की 'शहीद हरि सिंह', 'श्रीमती' (पंचजगत) इसी दशक की छपी कहानियां हैं। उपर्युक्त यही कथाकार आठवें दशक की सशक्त हिमाचली हिन्दी कहानी को राष्ट्रीय धारा से जोड़ पाने के लिए प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। कहना न होगा कि इस सातवें दशक की कहानी एवं कहानीकारों में आठवें दशक की हिमाचली हिन्दी कहानी के उज्ज्वल भविष्य की समर्थ संभावनाएं थीं। सातवें दशक के अन्त तक यह साठोत्तरी हिन्दी कहानी लेखन यहां के कथाकारों से लिखने के लिए लिखाता तो रहा किन्तु ये कथाकार कुछ को छोड़कर हिन्दी कथा की प्रवृत्तियों, कथ्य एवं शिल्प सम्बंधी परिवर्तनों के प्रति इतना सजग नहीं रहे जितनी सजगता आठवें दशक की कहानी में देखने को मिलती है। आलोच्य काल में हिमाचली कहानी लेखकों का कहानी लेखन के प्रति विशेष लगाव प्रशंसनीय है। इतना स्पष्ट कर देना यहां संगत होगा कि आठवें दशक तक आते-आते-नयी पीढ़ी के उपर्युक्त कथाकार पुराने मूल्यों के प्रति संवेदनात्मक मोह से अलग होकर बौद्धिक परीक्षण करने में प्रवृत्त रहे हैं। साठोत्तरी कथा की प्रवृतियां और वर्ण्य विषय इस कथा साहित्य में सायास थोपे नहीं गए। इस दशक की कहानियों में समाज में आए पारिवारिक विघटन के साथ-साथ सम्बंधों के टुकड़े-टुकड़े में भी कुछ नया और मूल्यवान खोजने का प्रयत्न हो रहा है।

**आठवां दशक** साठोत्तर कहानी (आठवां दशक) हिमाचल की हिन्दी कहानी में नयी उज्ज्वल संभावनाओं के साथ कहानी विधा में विशेष लगाव लेकर प्रतिफलित हुआ है। कहानी के क्षेत्र में 1970 से '80 तक की समयावधि में यहां की हिन्दी कहानी ने आशातीत प्रगति की उंचाइयों को छूने का प्रयत्न किया है। यहां पर स्पष्ट कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि इसी काल में सर्वाधिक संकलित एवं संपादित कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। कहानी विधा में प्रांतीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर कुछ कर गुजरने की आपसी होड़ सहज देखने में आई है। जिस साठोत्तरी कहानी का मूल चरित्र आंदोलन-

धर्मी था और अनेक आयाम पूर्ववर्ती आन्दोलन से भिन्न थे उनका प्रभाव हिमाचल की हिन्दी कहानी पर भी पड़ा। समकालीन और सहज कहानी को लेकर हिमाचल की हिन्दी कहानी में खास मुद्दे उठाए गए और सक्रिय कहानी तक का नारा लगाया गया। 'सहज कहानी' के आन्दोलन को यह कह कर सराहना हासिल हुई कि 'सत्तरोत्तर' कहानी को सहज कहानी कहना अधिक उपयुक्त एवं तर्कसंगत है क्योंकि कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से सत्तरोत्तर कहानियां असहज से सहज की ओर उन्मुख हुई हैं, यह कहकर उपहास किया भी लगता है कि डॉ० फुल्ल का सहज कहानियों की भूमिका में मात्र एक वक्तव्य ही उछाला गया है।[10] जो भी हो इसे डॉ० फुल्ल को श्रेय दिये बनता है कि उन्होंने सहज कहानी के माध्यम से यहां के कथाकारों को कहानी के परम्परागत शाश्वत गुणमूल्यों को स्वीकारते हुए कथ्य एवं शिल्प की नई दृष्टि की ओर आकर्षित किया। सहज कहानियां के बाद डॉ० फुल्ल द्वारा संपादित प्रकाशित कथासंग्रहों 'पगडंडियां' और 'पहचान' में अधिकतर लेखकों द्वारा लिखी गई कहानियां सहज कहानी की परिभाषा की परिपालना करती प्रतीत होती है।

आठवें दशक की हिमाचल की हिन्दी कहानी की शुरूआत भी किशोरी लाल वैद्य द्वारा संपादित कथा संग्रह 'एक कथा परिवेश' से मानी जा सकती है। यह कथा संकलन हिमाचली परिवेश के अठारह कहानीकारों का प्रतिनिधि और महत्वकांक्षी संकलन है। संकलन कहानियां आधुनिक युगबोध और नए शिल्प की ताज़गी के लिए स्मरण की जाएंगी। इनमें से ज़िया की 'बोम्फ', हिमेश की 'सिलसिले' और लोहिया की 'खून का रिश्ता' तकनीक की दृष्टि से सराहनीय कहानियां हैं। विजय सहगल की 'दलदल' श्रीनिवास की 'मरे हुए एकान्त' भी संग्रह की बेहतर कहानियां हैं।

'युगों पुराना संगीत' (1973) गंगाराम राजी का निजी कहानी संग्रह है। ये कहानियां प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भोगे हुए यथार्थ की कहानियां हैं। तुलसी रमण ने इस संग्रह की कहानियों को यथार्थ से परे अनेक हास्यास्पद काल्पनिक घटनाओं से भरा हुआ कहा है।[11] लेखक का आक्रोश कुछ कहानियों पर हॉवी हुआ लगता है। 'भोग', 'भूख' आदि कहानियां काफी अच्छी हैं जबकि अन्य लिखने के लिए जबरदस्ती लिखी प्रतीत होती हैं। इसके अनन्तर संपादित, संकलित कथा-संग्रहों के दौर में डॉ० सुशील कुमार 'फुल्ल' द्वारा प्रकाशित 'सहज कहानियां', पगडंडियां, पहचान, डॉ० प्रत्यूष गुलेरी द्वारा संपादित स्मृति कहानी संग्रह प्राप्त होते हैं। "सहज कहानियां" समान्तर कहानी की बढ़ती जड़ता को चुनौती देने वाले तथा भारतीय कहानी में सर्वप्रथम सहज कहानी को प्रतिपादित एवं प्रचारित करने वाला कहानी संग्रह है।[12] इस संग्रह की कुछ कहानियां नि:संदेह आम आदमी की तकलीफ से जुड़ी कहानियां हैं जिनमें अर्थव्यवस्था और पारस्परिक सम्बंधों के तनाव को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।[13] इनमें 'मुरली' (गौतम व्यथित), 'सिसकी' (अशोक सरीन), 'अजात शत्रु' (शेष अवस्थी), 'लोक परलोक' (सागर पालमपुरी) तथा 'धुन्धले खाके' (शिव उपाध्याय) की कहानियां इसी कोटि की आम आदमी की कहानियां हैं। हिमप्रस्थ में सुधीरेन्द्र शर्मा का वक्तव्य शेष कहानियों के संदर्भ में दोहराया जा सकता है— 'सारांश में संकलन की अधिकांश कहानियां हल्की-फुल्की बेसिरपैर की तथा माथा दु:खाने वाली हैं'। इसमें प्रेम भारद्वाज और सोम शर्मा नए कथाकारों की कहानियों में भविष्य की उज्जवल संभावनाएं निहित हैं। "पगडंडियां" (1978) में संपादित संकलन में 19 कहानीकारों की कहानियां संगृहीत हैं। दैनिक ट्रिब्यून के संपादक राधेश्याम शर्मा ने इन

कहानियों के संदर्भ में लिखा है — ये प्राय: सभी आंचलिक कहानियां हैं जिनमें हिमाचल प्रदेश के अंचल विशेष के जनजीवन की झांकी है। सभी कहानियां कथावस्तु की दृष्टि से उत्तम और जन जीवन का स्पर्श करती हैं। सुधीरेन्द्र की 'उसका सागर', विजय सहगल की 'बिना पलक की मछलियां', मौलू राम ठाकुर की 'कीड़े', डॉ० व्यथित की 'पंछी बोलता रहा', फुल्ल की 'अधर में लटके लोग' शिल्प की दृष्टि से प्रतीकात्मक एवं व्यंग्यात्मक कथाएं हैं। जीवन की विसंगतियों को रेखांकित करने में अशोक सरीन की 'मृगतृष्णा' डॉ० प्रत्यूष गुलेरी की 'कमलो', सुदर्शन वसिष्ठ की ''सरकारी पैसा', गिरिधर योगेश्वर की 'किनारा' श्रेष्ठ कहानियां मानी जाएंगी।

पहचान में डॉ० फुल्ल ने 16 कहानीकारों को सम्मिलित किया है। इस संग्रह में 'ऋण' (अशोक सरीन), 'भटका राही' (गिरिधर योगेश्वर), 'सात कीलें' (डॉ० बंशी राम शर्मा), 'बेकार की कार' (राजी), 'बुढ़िए राम बोल' (सोम शर्मा), 'सीमान्त' (निर्मल फुल्ल), 'सुलगती राख' (देस राज डोगरा), 'वह रोयी (धर्मपाल), 'विरासत' (सुदर्शन वशिष्ठ), 'एक तथ्य अटका हुआ' (डॉ० पीयूष गुलेरी), 'टुकड़ा-टुकड़ा ज़िंदगी' (रवि सिंह), 'समता' (डॉ० प्रत्यूष गुलेरी), 'पंखहीन' (अश्विनी अवस्थी), 'भोगा हुआ यथार्थ' (रमेश अरुण), 'उमड़ता सा कुछ अन्तहीन' (महीन्द्र सूद) तथा 'जिजीविषा' (डॉ० फुल्ल) कहानियां संगृहीत हैं। डॉ० जगमोहन चोपड़ा ने इन कहानियों को आम आदमी की संवेदनशीलता को उजागर करने वाली कहानियां कहा है। नि:संदेह अपने शिल्प एवं कथ्य की दृष्टि से उक्त 16 कहानियां निम्नमध्यवर्ग, आम आदमी के तनाव और घुटन की कहानियां हैं जिनका राष्ट्रीय धारा में अपना महत्व है।

कहानी में आम-आदमी की बात चली है और कहानी को कहानी ही कहा जा रहा है। इसी कोटि की कहानियों का संपादन डॉ० प्रत्यूष गुलेरी का 'स्मृति' कहानी संग्रह है। इस संग्रह की अधिकतर कहानियां प्रादेशिक माटी की गंध से युक्त होते हुए महानगरीय जीवन के विघटन, संत्रास और आम आदमी के जीवन को अभिव्यक्त करती हैं। डॉ०राममूर्ति वासुदेव ने समालोचना करते हुए 'सुन्दरिया की मां' (मस्त राम कपूर), 'दढ़ियल' (मनोहर लाल), 'नियुक्ति पत्र' (हरिचन्द पुष्कर), 'दिल की गांठ' (अमर सिंह रणपतिया), 'ये भेड़िए' (डॉ० पीयूष गुलेरी), 'समस्या का अन्त' (देस राज डोगरा), 'फासला' (डॉ० फुल्ल) और 'आसमान से धरती पर' (डॉ० प्रत्यूष गुलेरी) कहानियों को टूटते-बिगड़ते संभ्रांत सम्बंधों, आदमी की कृतघ्नता की वृत्ति, संघर्षरत बेरोज़गार युवकों की दर्द और चालू दफ्तरी लड़कियों के कारनामों को व्यंजित करती आम आदमी की कहानियां कहा है।[14] तुलसीरमण ने उक्त संग्रह की आलोचना करते हुए 'सुन्दरिया की मां' (डॉ० मस्त राम कपूर), 'दढ़ियल' (मनोहर लाल), 'नियुक्ति पत्र' (हरिचन्द पुष्कर) तथा 'आसमान से धरती पर' (डॉ०प्रत्यूष गुलेरी) कहानियों को संकलन की बेहतर कहानियां माना है।[15]

निजी प्रकाशित कहानी संग्रहों में दम्पति लेखक शान्ता कुमार और सन्तोष शैलजा का 'ज्योतिर्मयी' कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है। यही कहानी संग्रह 1977 में 'पहाड़ बेगाने नहीं होंगे' शीर्षक से भी छपा है। शान्ता कुमार की 'समर्पण', 'गोलदायरा' और 'सरसराहट' कहानियां आक्रोश-प्रतिशोध की कहानियां हैं। सन्तोष शैलजा की कहानियां 'बिछुड़ी राहें', 'न्यू सीता' और 'रज्जो काकी' आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से आक्रान्त कहानियां हैं। इन कहानियों में ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं को

रूपायित किया गया है, जिन पर नाटक लिखने की परम्परा अधिक रही है। इस संग्रह की कहानियां आधुनिकता बोध से बेखबर लोक-गाथाओं की शैली में आदर्शों और सिद्धान्तों की दुनिया की कहानियां हैं।[16]

इसी कालावधि में एक विशिष्ठ निजी कहानी संग्रह 'फासला' कथाकार केशव का (1978) छपा है जिसमें केशव की बारह कहानियां संकलित हैं। निजी अनुभवों से अनुप्राणित इन कहानियों में युवाआक्रोश एवं अमूर्त पीड़ा अपनी पूरी बिम्बात्मकता के साथ उजागर हुई हैं।[17] केशव की 'दरिंदे', 'फासला', 'कछुआ' और 'जंगल' आदि कथ्य, शिल्प एवं भाषा की दृष्टि से श्रेष्ठ कहानियां साबित हुई हैं। तुलसी रमण ने केशव की कहानियों की भाषा में निर्मल वर्मा की गंध जैसी बानगी को ढूंढ निकाला है। इसी समयावधि में दिनेश धर्मपाल का कथा संग्रह 'क्षितिज' भी देखने में आया है। इनकी कहानियों के सम्बंध में यह कहना संगत जान पड़ता है कि ये कहानियां जीवन से पलायन की कहानियां हैं। यह भी सच है कि इनके पास सधी हुई भाषा तो है लेकिन तकनीक नहीं।[18] 'अन्तरालों में घटता समय' हिमाचल की हिन्दी कहानी में उज्ज्वल संभावना लेकर प्रकाश में आया है। सुदर्शन वशिष्ठ का यह प्रथम कहानी संकलन है जिसमें ग्रामीण परिवेश से प्राथमिकता मिली है। मध्यम वर्ग का जिस रूप में आर्थिक शोषण हो रहा है, कटुता तथा दूरियां फैल गई हैं उन्हें सुदर्शन वसिष्ठ ने अपनी कहानियों में सफलता से उजागर किया है। 'सरकारी पैसा', 'आखिरी मोड़' तथा 'अन्धेरे का बोध' कहानियां सत्य पर आधारित होती हुई मानसिक घुटन, पारिवारिक विघटन और मानव सम्बंधों के सन्तुलन-असन्तुलन की कहानियां हैं। पत्र-पत्रिकाओं में छपी सुदर्शन वशिष्ठ की 'सेमल की फूल' और 'गेट संस्कृति' नए भावबोध को आधार बनाकर लिखी गई श्रेष्ठ कहानियां हैं। आठवें दशक में ही यशवीर धर्माणी, सुन्दर लोहिया और अमिताभ गुप्त की कहानियां भी पत्र पत्रिकाओं में पढ़ने को मिली हैं।

**नवां दशक** नवें दशक के प्रारंभ में ही हिन्दी कहानी को गति देनें, सरपट दौड़ाने वाले एवं सहज कहानी के अधिष्ठाता डॉ० सुशील कुमार फुल्ल का कथा संग्रह 'खण्ड-खण्ड मानसिकता' प्रकाशित हुआ है। इसकी भूमिका में भी 'सहज कहानी' की व्याख्या की गई है और कहानी सम्बंधी परम्परागत शाश्वत् गुणमूल्यों को स्वीकारा गया है। यही नहीं, यह भी कहा गया है कि जिस प्रकार धमनियों में रक्त प्रवाह सहज होते हुए भी कलात्मक है उसी प्रकार सहज कहानी सहजानुभूतियों का प्रगटीकरण करते हुए शिल्प की दृष्टि से आकर्षक रचना होती है। कहना न होगा कि डॉ० फुल्ल कहानियों के कथ्य एवं शिल्प के प्रति इतना सजग हुए हैं कि पाठक पर वे बलात् हॉवी हो जाते हैं। अटकाव, 'टुकड़े-टुकड़े' 'अपने-अपने दु:ख' और 'फासला' कहानियों में मूल्यहीनता, टूटते परिवेश में जी रहे आदमी के अकेलेपन और उजागर की गई सामाजिक विसंगतियों का सहज चित्रण है। 'अपने अपने दु:ख,' 'अपनी-अपनी बात', अपने लिए कहानियों में जीवन-सत्यों का उद्‌घाटन, संघर्ष, तनाव और कड़वाहट की अभिव्यक्ति मिलती है।

केशव के संपादन में प्रकाशित कथा संकलन 'आहटें' में ग्यारह कहानीकारों की कहानियां संकलित हैं। इनमें से कुछ लेखक राष्ट्रीय धारा से जुड़ने में सायास प्रयत्नशील हैं और इसमें उन्हें सफलता भी हासिल हुई है। सायास जुड़ना कालजयी प्रवृत्ति में बाधक हो सकता है। व्यवस्था और

अधिकार आज की हिन्दी कहानी पर हावी हैं। परिवर्तित यथार्थ और नए युगबोध को समझाने के लिए कहानी ने हर कहीं चोला बदला है कुछ और नहीं। 'पीलिया' (योगेश्वर शर्मा), 'इन्दु तुम' (महाराज कृष्ण काव), 'भेड़िए' (अरुण भारती) कहानियों में जिए हुए परिवेश की बात की गई है। महाराज कृष्ण काव की कहानियां दैनिक ट्रिब्यून में भी छपती रही हैं। काव की 'नीलामी' और योगेश्वर शर्मा की 'नंगा आदमी' कहानियां कथ्य और प्रभाव के लिए याद की जाएंगी।

'अलाव' केशव का निजी कथा संग्रह है। इसमें पारिवारिक विघटन और आपसी सम्बंधों के उतार-चढ़ाव पर आधारित केशव की एक लम्बी कहानी है जिसके माध्यम से लेखक हिमाचल प्रदेश की गंवई ज़िंदगी में उतरे हैं। अलाव की कहानियों के सम्बंध में सुरेश सेठ ने लिखा है — ये प्रतिबद्ध कहानियां हैं। परन्तु इनकी प्रतिबद्धता किसी पार्टी के साथ नहीं, अपने आस-पास के लोक जीवन के साथ है।[19] यह मानना पड़ेगा कि केशव की भाषा कथाकार की अनुवर्ती है, जिसमें कविता की सी मोहकता मौजूद है। यही विशेषता केशव की कहानी को अन्य कहानियों से अलगाती है। जंगल, 'गटर' और 'छोटा टैलीफोन बड़ा टैलीफोन' कहानियां कथ्य, शिल्प एवं भाषा तीनों ही दृष्टि से इस दशक की महत्वपूर्ण एवं समर्थ कहानियां हो सकती हैं।

सुदर्शन वशिष्ठ का 'खुलते अमलतास' हिमाचली जनजीवन की झलक उपस्थित करता संपादित कथा संग्रह है। शिल्प और कथा-कौशल के अभाव में भी संकलन की अधिकांश कहानियों में कल की अच्छी सम्भावनाएं हैं। दैनिक ट्रिब्यून में डॉ० मानव ने 'वसन्ती' (ज्ञानवर्मा) 'जो लिखा नहीं गया' (राजकुमार कमल), 'टुकड़े-टुकड़े विश्वास' (डॉ० प्रत्यूष गुलेरी), 'विधायक' (हेमकान्त कात्यायन), 'अनुदान की भैंस' (विनोद हिमाचली), तथा 'चन्दो की वापिसी' (मोती लाल घई) कहानियों को ज़िंदगी के दु:खदर्द, सुख-दुख और आस पास के माहौल की कहानियां कहा है।[20] यही नहीं 'विनाश काले' (गिरिधर योगेश्वर), 'भावनाओं की व्यथा' (जगदीश शर्मा), 'खोया हुआ आदमी' (अशोक सरीन), 'बलिवेदी' (लोकरंजन) कहानियां रिश्तों-सम्बंधों के विघटन किशोर हृदय की संवेदनाओं और आम आदमी के संघर्ष से जुड़ी कहानियां हैं।

'मानव मन' कहानी संग्रह में संसार चन्द प्रभाकर ने मन की स्थितियों को बारह कहानियों में उद्घाटित किया है। जहां एक ओर 'प्रार्थना-पत्र' में बेरोज़गारी की जटिल समस्या का प्रतिरूपण है वहां दूसरी ओर 'वसीयत नामा' कहानी क़ानून के लचीलेपन और सामाजिक व्यवस्था के खोखलेपन को उभारती है। दायित्व में पक्षियों के प्रति प्रदर्शित सद्भावना हमें सोचने पर मजबूर करती हैं। शेष कहानियां बहुत पहले की लिखी जान पड़ती हैं। कदाचित् इसीलिए हल्की-फुल्की हैं।

'घाटियों की गंध' (सुदर्शन वशिष्ठ), 'अबरो की चीमंग' (सुरेन्द्रनाथ वर्मा), 'कथान्तर' (श्रीनिवास जोशी), 'पहाड़ से समुद्र तक' (तुलसी रमण) के संपादित कथा-संकलन हैं। 'घाटियों की गन्ध' हमारे इस अध्ययन का अन्तिम कहानी संग्रह है। सुदर्शन वशिष्ठ ने इसमें नए पुराने कथाकारों की चौदह कहानियां संग्रहीत की हैं। वे लिखते हैं — प्रस्तुत संग्रह में नए व पुराने दोनों ही तरह के कथाकार हैं। मोटे तौर पर नए वे हैं जिन्होंने अभी शुरुआत की है और लम्बा रास्ता तय किया है। वे कहां पहुंचे हैं, कहीं पहुंचे भी हैं या वहीं खड़े हैं। उम्र में कम अधिक होने से कहानीकार नया या पुराना नहीं होता। इस संग्रह की 'पथराती आंखें' (सैन्नी अशेष), 'उन्मुक्त बंधन' (प्रो० नरेन्द्र अरुण), 'अपना-

पराया' (केशव चन्द्र), 'पीछे लौटता मन' (डॉ० राममूर्ति वासुदेव), कहानियों में आगे बढ़ने की संभावनाओं से नकारा नहीं जा सकता।

**निष्कर्ष** नवां दशक हिमाचल की साठोत्तरी हिन्दी कहानी का सजग, समृद्ध एवं संभावना सम्पन्न काल है। सुदर्शन वशिष्ठ, डॉ० सुशील कुमार फुल्ल, केशव, विजय सहगल, महाराज कृष्ण काव, श्रीनिवास जोशी, योगेश्वर शर्मा आदि कथाकारों की कहानियां देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में भी पढ़ने को मिली हैं। नवे दशक के कुछ कहानीकार ऐसे भी हैं जो निरन्तर पत्र पत्रिकाओं में छप रहे हैं और उनकी कहानियां तकनीक के कारण आकर्षित कर रही हैं। इनमें से प्रमुख हैं — बद्री सिंह भाटिया, अरुण भारती, दीपा त्यागी, शंकर लाल शर्मा, डॉ० नवीन शर्मा, अशोक गौतम, जगदीश शर्मा, सैन्नी अशेष, हरि शर्मा, देवेन्द्र धर, डॉ० राममूर्ति वासुदेव, तुलसी रमण आदि।

सारांशत: कहा जा सकता है कि हिमाचल की हिन्दी कहानी के सातवें दशक में उसके विकास की जो संभावना की गई थी वह आठवें और नवें दशक में कथ्य और शिल्प के रूप में वास्तव में आशातीत फलीभूत हुई है। इसी वेगमयी कथाधारा को सही दिशा में मोड़ने और जोड़ने के अलग-अलग प्रयास जारी हैं। नि:संदेह हिमाचल की साठोत्तरी हिन्दी कहानी का कहानी-कार आज की कहानी के परिवर्तित मूल्यों के प्रति सचेष्ट, कथ्य, भाषा एवं शिल्प सम्बंधी आए बदलावों से बखूबी अपने आपको वाक़िफ़ किए लगता है। यही स्थिति हिमाचल की कहानी को भविष्य के प्रति हमें आश्वस्त करती हैं और राष्ट्रीय धारा से जुड़ने का सुदृढ संकेत भी देती है।

---

संदर्भ:


1. मीरा सीकरी/नई कहानी पृ. 79.
2. डॉ० सन्तबख्श सिंह/नई कहानी: नए प्रश्न, पृ. 148.
3. डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय/हिन्दी कहानी बदलते आयाम, पृ. 133.
4. डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय/हिन्दी कहानी बदलते आयाम, पृ. 152.
5. डॉ० सुशील कुमार फुल्ल/हिमाचल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 53.
6. डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी/गुलेरी जी की अमर कहानियां, पृ. 11.
7. प्रो० सुन्दर लोहिया/स्मारिका/हिमाचल प्रदेश के हिन्दी कहानीकार, पृ. 40.
8. डॉ० सुशील कुमार फुल्ल/हिमाचल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 62.
9. शिखर,तीसरा अंक/हिमाचल की समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 181.
10. डॉ० विनय/आठवें दशक की हिन्दी कहानी/हिमप्रस्थ 4/83, पृ. 26.
11. तुलसी रमण/शिखर/हिमाचल की समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 183.
12. डॉ० सुशील कुमार फुल्ल/हिमाचल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 65.
13. डॉ० जगमोहन चोपड़ा/सारिका 8/77 पृ. 71.
14. डॉ० राममूर्ति वासुदेव/हिमप्रस्थ, 10/84, 64.

१५: तुलसी रमण/हिमाचल की समकालीन हिन्दी कहानी, पृ. 184.

16. तुलसी रमण/वही़............................ पृ. 189.
17. डॉ० सुशील कुमार फुल्ल/...............इतिहास पृ. 68.
18. तुलसी रमण/समकालीन हिन्दी कहानी/शिखर, पृ. 188.
19. सुरेश सेठ/अलाव/समीक्षा/हिम संस्कृति/प्रवेशांक, पृ. 70.
20. दैनिक ट्रिब्यून/डॉ० फूल चन्द मानव/खुलते अमलतास 8.8.84 का अंक, अन्य: हिन्दी कहानी आठवां दशक।


[यह विषयपत्र हिमाचल अकादमी द्वारा आयोजित एक साहित्यिक समारोह में पढ़ा गया था।]

सोमसी

# महर्षि पराशर का पावन धाम

डॉ० विद्याचन्द ठाकुर*

वसिष्ठस्य सुतःशक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः ।
पराशरस्य दायादः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।।
व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्ते पुत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधम्।।

भारतीय संस्कृति के महान् संयोजक एवं नियोजक पराशर पुत्र वेदव्यास की महाभारत के शान्ति पर्व मोक्ष धर्म में वर्णित उक्त वंश-परम्परा एवं व्यास-स्तोत्र से स्पष्ट हो जाता है कि महामुनि पराशर ब्रह्मा जी के मानस पुत्र वसिष्ठ ऋषि के पौत्र, शक्ति ऋषि के पुत्र, कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास् के पिता और शुकदेव मुनि के पितामह थे।

महाभारत में वर्णित पराशर-जन्म प्रसंग के अनुसार महामुनि वसिष्ठ अपने सौ पुत्रों की अकाल मृत्यु से अत्यन्त व्यथित थे। उन्हें अपने वंश-नाश का जब-जब स्मरण हो आता तो वे धैर्य खो जाते थे और अपनी जीवन लीला समाप्त करने का प्रयास करते थे। ऐसी ही परिस्थिति में एक दिन जब वसिष्ठ मुनि दृढ़ निश्चय के साथ आत्म-हत्या के लिए उद्यत होकर आश्रम से निकले तो उनकी पुत्रवधू अदृश्यन्ती भी उनके पीछे-पीछे चल निकली। कुछ देर बाद महामुनि के कानों में वेदमन्त्रों की ध्वनि सुनाई दी। वे पीछे मुड़कर देखते हैं तो उनकी पुत्रवधू पास खड़ी है। मुनिवर ने अदृश्यन्ती से पूछा-बेटी ! मेरे पुत्र शक्ति ऋषि के कण्ठ सुर में इस समय वेद मन्त्रों की ध्वनि कहां से आ रही है? अदृश्यन्ती माता ने आह भरी और निवेदन किया— पिता जी ! यह मेरे गर्भ में आपके पुत्र का पुत्र जन्म धारण किये हुए है और वही गर्भ से वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रहा है। इस प्रकार अपने वंश दीपक की स्थिति का आभास होने पर वसिष्ठ मुनि ने आत्म-हत्या का विचार त्याग दिया। बाद में जब गर्भस्थ शिशु ने इहलोक में जन्म लिया तो इनका नाम 'पराशर' रखा गया। नामकरण के सम्बन्ध में, महाभारत के आदि-पर्व के एक सौ सतरहवें अध्याय के तीसरे श्लोक में लिखा है :—

परासुः स यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनिः ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ।।

अर्थात् उस बालक ने गर्भ में आकर परासु (मरने की इच्छा वाले) वसिष्ठ जी को पुनः जीवित रहने के लिए प्रोत्साहित किया था, इसलिए वे लोक में 'पराशर' के नाम से विख्यात हुए।

स्थानीय बोली में इन्हें 'देऊ पड़ासर' भी कहा जाता है। निःसन्देह ध्वनि परिवर्तन के फलस्वरूप 'देव पराशर' शब्द ही 'देऊ पड़ासर' रूप में प्रस्थापित हुआ है। यह ध्वनि परिवर्तन पूर्णतः भाषा-वैज्ञानिक नियमों

*ज़िला भाषा अधिकारी, मण्डी (हि.प्र.)

के अनुकूल है। देव में 'व' ध्वनि सम्प्रसारण के नियम के अधीन 'ऊ' हो गई है जैसे कि 'जीव' से 'जीऊ' बनता है। इसी प्रकार मूर्धन्य 'र' ध्वनि उत्क्षिपतिकरण के द्वारा शब्द मध्य में 'मुद्रिका' शब्द के 'मुदड़ी' रूप में परिवर्तन की भाँति 'ड़' हो गयी है। अत: स्थानीय पहाड़ी मण्डयाली एवं कुल्लवी में 'देऊ पड़ासर' शब्द-रूप का प्रचलन ध्वनि परिवर्तन की सामान्य प्रकृति के आधार पर सहज स्वाभाविक है।

महर्षि पराशर कुल के सभी मनीषियों ने भारतवर्ष में ज्ञान, धर्म तथा सांस्कृतिक जागरण की पवित्र सरिता प्रवाहित करके निखिल विश्व को आप्लावित किया है। पराशर ऋषि ने भी विष्णु पुराण, पराशर स्मृति, पाराशर होरा शास्त्र आदि ज्ञान-विज्ञान के अनुपम ग्रन्थों की रचना की है। विशेषत: पाराशर स्मृति तो स्मृति शास्त्र में कलियुग का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जाता है :—

**कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमा स्मृताः।**
**द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशरा स्मृताः।।**

अर्थात् सत्युग में मनु के धर्म की मान्यता रही है, त्रेता में गौतम तथा द्वापर में शंख एवं लिखित मुनि द्वारा निर्देशित धर्म का विधान था और कलियुग में पाराशर स्मृति युगानुरूप है।

त्रिकालज्ञ तपोनिष्ठ महामुनि पराशर ने अपने साधनाकाल में पर्वतराज हिमालय के अनेक निर्जन स्थानों को अपनी चरण-धूलि से पवित्र किया है। जिनमें कुल्लू के महाराजा क्षेत्र के कामांद ग्राम से पीछे संधार वन में कणोण नामक स्थान पर स्थित पराशर आश्रम और मण्डी जनपद के उतरसाल क्षेत्र की पराशर झील बहुमान्यता प्राप्त है। इनमें भी पराशर झील अपनी विशिष्टताओं के कारण अधिक महत्वपूर्ण है और माण्डव्य प्रभा का यह मुकुटमणि स्थल वस्तुत: आस्तिक श्रद्धालु जनों की पुण्य भूमि, कला जिज्ञासुओं की श्रेष्ठ कला-निधि तथा प्राकृतिक सौंदर्य पिपासुओं की प्राकृतिक सुषमा सम्पन्न रमणीय दृश्यावली है।

पराशर झील मण्डी नगर के उत्तर पूर्व में लगभग ९००० फीट की ऊंचाई पर ४० किलोमीटर दूर है। यह दूरी यहां पहुंचने के सबसे सुगम कटौला-बागी मार्ग से होकर है। मण्डी से बागी तक ३२ किलोमीटर तक बस योग्य सड़क है और हिमाचल पथ परिवहन की नियमित बसें इस मार्ग पर प्रतिदिन चलती है। इससे आगे सूहड़ा-हलगढ़ होकर पराशर झील तक जीप योग्य सड़क निकाली गई है। पर यह सड़क सुधरी अवस्था के अभाव में न होने के बराबर है। अत: यात्रियों को बस सुविधा बागी तक ही उपलब्ध है। यहाँ से आगे आठ किलोमीटर की चढ़ाई चढ़ कर पराशर झील पहुंचा जाता है। यद्यपि चढ़ाई कुछ कठिन अवश्य है परंतु, पद-यात्रा का अपना एक विशेष महत्व है। प्रकृति के रंगीन दृश्यों को समीपता से देखने का जो आनन्द एक पद यात्री प्राप्त कर सकता है, मोटरयान में भागते हुए वह कहां मिल सकता है? अन्य विभिन्न मार्गों से भी यहाँ पहुंचा जा सकता है। एक पन्द्रह किलोमीटर पैदल का रास्ता राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित पण्डोह से शिवा बदार होकर है। मार्ग में शिवा एक ऐतिहासिक स्थल है। यहीं पर पराशर मंदिर बनवाने वाले राजा बाणसेन का पालन-पोषण उनके नाना राणा हरदेव के घर पर हुआ था। एक मार्ग हणोगी से बाहन्दी होकर है। इसकी दूरी लगभग २० किलोमीटर है। दस किलोमीटर पर बाहन्दी ग्राम पड़ता है। बाहन्दी ग्राम में देवता पराशर का भण्डार है। यह भण्डार हिमाचल प्रदेश के अधिकांश भण्डारों की तरह पहाड़ी शैली का है। इस शैली को पहाड़ी भण्डार शैली का नाम देना उपयुक्त प्रतीत होता है। क्योंकि भण्डारों की शैली एक विशिष्ट शैली है, जो कि देहरा या डेहरा (देवगृह, मन्दिर) से भिन्न होती है। यह देवता के साज समान का भाण्डागार होता है। स्थानीय बोली में इसे

'मढार' भी कहते हैं--जो कि भण्डार का ही परिवर्तित रूप है। बाहन्दी भण्डार में देवता पराशर के निमित्त पांच मोहरे (धातु प्रतिमायें) हैं। एक मोहरा मण्डी नरेश सिद्ध सेन द्वारा भेंट किया गया है। इसका उल्लेख मोहरे पर टाकरी लिपि में किया हुआ है। राजा सिद्ध सेन ईस्वी सन् १८८४ से १७२७ तक मण्डी राज्य का शासक रहा है। इस भण्डार में देवता के तीन चांदी में बने घोड़े भी हैं। राष्ट्रीय उच्च राज मार्ग पर ही हणोगी से आगे पनारसा नामक स्थान से भी एक रास्ता पराशर झील तक जाता है। यह मार्ग शनोड़ तक बस योग्य और वहां से १०-१२ किलोमीटर चुल्ली नाला होकर पैदल है। इस मार्ग पर देवी अम्बिका, नाऊ, देव नारायण, किगस, देव कण्डोही, मटवाड़ी और देवता वरनाग, शनोड़ आदि देवों के दर्शनीय मन्दिरों के दर्शन भी किये जा सकते हैं।

कुल्लु जनपद से पराशर झील पहुंचने के लिए मुख्य राज मार्ग पर स्थित बजौरा स्थान से रास्ता जाता है। यह रास्ता लगभग-३५-४० किलोमीटर का है। अब बजौरा से कांढी या राला तक बस सेवा सुलभ है। आगे ओड़ी सौह होकर पैदल चलना पड़ता है। बजौरा से टिक्कर-बालू के रास्ते से भी पराशर पहुंचा जाता है। इस मार्ग पर बजौरा में विश्वेश्वर महादेव मन्दिर, राला में देव ब्रह्मा कांढी से आगे टिहरी में भी देव ब्रह्मा तथा बालू के रास्ते बालु में देवी जालपा के मन्दिर देखे जा सकते हैं। कुल्लू से एक अन्य पैदल रास्ता दोहरा नाला, लौट बनाला एवं खणोगी धार होकर है। यह रास्ता कांढी में बजौरा मार्ग से मिल जाता है। इस प्रकार उपरोक्त भिन्न-भिन्न मार्गों एवं अन्य और भी छोटे-छोटे मार्गों से पराशर झील पहुंचा जाता है। परन्तु, दूर के यात्रियों के लिए मण्डी से कटौला-बागी और कुल्लू से बजौरा-कांढी का रास्ता सबसे उपयुक्त है।

पराशर झील जन-बस्तियों से बहुत दूर स्थित है। अत: यहां आवास और भोजन व्यवस्था से यात्रियों का अवगत होना आवश्यक है। यहां ठहरने के लिए साधारण धर्मशालाएं है। वन-विभाग का एक विश्राम गृह भी है। जिसमें मेलों के अतिरिक्त अन्य दिनों में जगह मिल सकती है। बिस्तर और खाने पीने का सामान यहाँ के लिए अपना ले जाना पड़ता है। अब कुछ समय से मेलों में खाने के होटल भी चलते हैं। कुल्लू और मण्डी के पारम्परिक श्रद्धालु मेलों में घर से बबरू, सुआलु आदि बना कर ले आते हैं। इस ठण्डे स्थान पर भोजन-सामग्री अधिक देर तक खराब नहीं होती। अत: दो-तीन समय का खाना यही पके-पकाये बबरू, सुआलु ही हो जाते हैं। कुछ आटा-दाल भी अपने साथ घर से ही लाते हैं, जिससे ताजा खाना भी पकाते हैं। मेलों के होटलों से अब तो खाने की असुविधा नहीं रही। तब भी यहां की अवस्थिति के अनुकूल यात्रियों को अपने साथ कुछ भोजन सामग्री साथ ले जाना उचित ही रहता है।

पराशर झील के परिसर में चारों और लगभग डेढ़ किलोमीटर घेरे में पर्वत ऐसा घेरा धारण किये हुए हैं जैसे, कोई दीवार बांधी गई हो। इस पर्वत रूपी दीवार के मध्य नीचे समतल स्थान पर झील और झील के तट पर पराशर मन्दिर तथा झील के बीच लगभग ३०० मीटर घेरे का तैरता भूखण्ड एक अनुपम दृश्य प्रस्तुत करता है। जब यात्री दूर की यात्रा कर प्रकृति की इस सौंदर्य स्थली पर आ पहुंचता है तो मार्ग की थकान भूल कर एक अलौकिक आनन्द में विभोर हो जाता है। पराशर झील के आस-पास 'ओड़ी-सौह' से 'शुक्का सर' तक दूर-दूर तक फैली ढलानदार चरागाहें, हरी-भरी वन-स्थलियां, तथा चारों ओर दूर-दूर कुल्लू, लाहौल-स्पिति, और धौलाधार पर्वत मालाओं के भूदृश्यों के दर्शन से प्रकृति-दर्शक अपने जीवन को धन्य मानता है। प्राकृतिक लीला के ये विविध दृश्य मानव को रमणीय भाव से कर्मपथ पर अग्रसर रहने तथा परस्पर सद्भावना स्थापित करने आदि मानवीय उच्च मूल्यों की अनन्य प्रेरणा प्रदान करते हैं।

यहां पर पैगौडा शैली में निर्मित तिमंजिला पराशर मन्दिर उत्कृष्ट कला की दृष्टि से पुरातत्व की अनमोल निधि है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स पुस्तक के भाग दो में पृष्ठ ३७७ पर उल्लेख मिलता है कि"देव पराशर के मन्दिर का निर्माण तेहरवीं-चौदहवीं शताब्दी में तात्कालीन मण्डी नरेश बानसेन द्वारा करवाया गया है।

पराशर ऋषि का मूल प्रतीक तो पिण्डी रूप में अवस्थित हैं परंतु, साथ ही एक भव्य पाषाण प्रतिमा महर्षि पराशर के रूप में पूजित है। इसके अतिरिक्त यहां पर विष्णु, महिषासुरमर्दिनी, लक्ष्मी एवं शिव की कलात्मक प्रस्तर मूर्तियां तथा एक संगमरमर में बनी गणेश की सुन्दर मूर्ति है। इस मन्दिर में उत्कीर्ण काष्ठ कला निश्चय ही कलाविदों के अध्ययन का रोचक विषय है। एण्टीक्वीटिज़ ऑफ हिमाचल प्रदेश के पृष्ठ ५४ पर इस मन्दिर की उत्कृष्ट काष्ठ कला की विशिष्टता का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि"पराशर मन्दिर समालंकृत और भव्य बनावट के मन्दिरों में एक है—"The Parashar temple is one of the most elaborate and ambitious structres."

जनश्रुति के अनुसार महर्षि पराशर हिमालय पर्वत पर अध्यात्म चिन्तन के लिए किसी उपयुक्त स्थान की खोज में थे। भ्रमण करते-करते वे इस स्थान पर पहुंचे। यहां सर्वथा अनुकूल वातावरण पा कर उन्होंने भूमि पर गुर्ज (लोह-छड़) मारा। इससे भूमि में से पानी की धाराएं आ निकलीं और फिर जल राशि संचित होकर झील का रूप धारण कर गयी। झील के तट पर पराशर ऋषि तपस्यालीन हुए। उसी तपस्या स्थल पर बाद में एक मन्दिर बना। कहा जाता है कि एक कुशल शिल्पी ने बारह वर्ष में यह मन्दिर तैयार किया। पूरा मन्दिर देवदार के एक ही विशाल वृक्ष से तैयार हुआ है। मन्दिर की काष्ठ कला देव दिशा से उत्कीर्ण हुई है। कहते हैं कि कारीगर पहले दिन लकड़ी तैयार करके रखता था। रात को लकड़ी पर मकड़ी द्वारा अपेक्षित आकृति उत्कीर्ण की जाती थी। बारह वर्ष में जब मन्दिर बना तो पराशर ऋषि की ओर से उसे पारिश्रमिक के रूप में एक मन सोना दिया जाने लगा। परन्तु कारीगर ने सोना लेने से इन्कार कर दिया और वह ऋषि से देवत्व शक्ति की मांग करने लगा। ऋषि द्वारा यह मांग न मानी गयी तो कारीगर ने आत्महत्या कर ली। पराशर ऋषि कारीगर की श्रद्धा भक्ति से अभिभूत हुए। उन्होंने अपने पोते शुकदेव ऋषि को यह पुण्य मृतात्मा अंगीकार करने के लिए कहा। शुकदेव ऋषि मान गये। उन्होंने कारीगर मृतात्मा को अपने साथ स्वीकार किया। इससे कारीगर को देवत्व का श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो गया। आज भी शुकदेव ऋषि के गले में कारीगर मूर्ति के रूप में विद्यमान है। थटा ग्राम में शुकदेव ऋषि का मन्दिर है। मृतात्मा को धारण करने के कारण इन्हें 'थटी मढ़्ध्याल' नाम से ही प्रसिद्धि प्राप्त है। मढ़्ध्याल से तात्पर्य है—'मृतक को धारण करने वाला। शुकदेव मुनि के इस पुण्य कार्य से पराशर ऋषि ने इन्हें अपने मन्त्री का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया। जब भी पराशर मन्दिर के जीर्णोद्धार का कार्य किया जाता है तो शुकदेव मुनि का रथ यहां लाया जाता है। उन्हीं की उपस्थिति में कार्य का शुभ मुहूर्त लगवाया जाता है। अतः मन्त्री के रूप में थटी मढ़्ध्याल को पराशर ऋषि के संग महत्वपूर्ण सम्मानित स्थान प्राप्त है।

पराशर झील की वास्तविक परिधि लगभग आधा किलोमीटर है परन्तु झील का पानी तट के बाहर भी कुछ आगे तक फैला होता है। वर्षा काल में यह फैलाव थोड़ा और अधिक विस्तृत हो जाता है। वास्तविक क्षेत्र में झील की गहराई बहुत अधिक बताई जाती है। कहते हैं कि एक बार मण्डी के किसी शासक ने झील की नपाई लेनी चाही। इसके आस-पास के क्षेत्र में लोगों के घरों से सैंकडों रस्सियां इकट्ठी की गयीं। सभी रस्सियों

को गांठ कर एक कर दिया गया। रस्सी के अगले सिरे पर लोहे का 'घण' बांधा और झील में नपाई के लिए डाल दिया। सारी रस्सियां समाप्त हो गयीं फिर भी घण थाह तक नहीं पहुंच पाया। शासक ने और रस्सियां इकट्ठी करने का आदेश दिया, परन्तु तत्क्षण ही किसी व्यक्ति की देह में देवी शक्ति ने प्रवेश किया और वह देव वाणी में बोला कि राजेश्वर! आप यह कार्य छोड़ दें। झील की गहराई आप नहीं प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि मेरा अन्त पाना सम्भव नहीं है। इस देव कथन को शिरोधार्य कर देवप्रिय शासक ने यह असफल प्रयास छोड़ दिया।

पराशर मन्दिर में आजकल पुजारी सदैव रहते हैं। पहले यहां ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थीं। केवल पर्व-त्यौहारों में ऋषि की पूजा अर्चना होती थी। एक समय एक ऐसी घटना घटी जिसके बाद यहां पुजारी सदा ठहरते हैं और तब से मन्दिर में प्रतिदिन सुबह शाम पूजा की परम्परा प्रारम्भ हुई। घटना प्रसंग इस प्रकार बताया जाता है कि एक बार पराशर झील के ऊपर पहाड़ी पर एक भैंस मरी पड़ी थी। भैंस का मास गिद्ध कौवे भक्षण करने लगे। मांस की नोच नुक्कड़ में भैंस का सिर धड़ से अलग हुआ और लुढ़ककर झील में जा डूबा। वह सिर झील में उस स्थान पर जा अटका जहां से पानी का निकास होता है। भैंस के सिर ने पानी का निकास रोक दिया। झील में पानी का चढ़ना आरम्भ हुआ। मन्दिर भी पानी में डूबने लगा। अति विकट स्थिति पैदा हुई। उस समय शनोड़ गांव में महर्षि पराशर का परम भक्त वरनाग देवता का कान वाक्दूत (गूर) 'लुंघू शनोड़ी' नामक व्यक्ति रहता था। वह अपने खेत में खनन कार्य कर रहा था। आकस्मात् उसका खनन उपकरण कुदाल मेखल नाम की वनस्पति की मजबूत जड़ में इस प्रकार फंस गया कि प्रयत्न करने पर भी उसे न निकाला जा सका। वह जरा विश्राम सा लेता खड़ा ही हुआ था उसे, उसी समय पराशर धार से आवाज सुनायी दी कि झील में देव-मन्दिर डूब रहा है, जल्दी से जल्दी पराशर धार पहुंच आओ। लुंघू शनोड़ी खेत से भागा, गाँव आकर सबको घटना से अवगत करवाया। वे लोग पराशर झील पहुंचे। झील में निरन्तर पानी चढ़ता जा रहा था। आस-पास के अन्य क्षेत्रों से भी लोग यहां आ पहुंचे। इस समस्या का कोई हल समझ नहीं आ रहा था। सभी देवताओं के गूर धौड़छ (धूप-पात्र) लिए देवी शक्ति का आहवान कर रहे थे। ऐसे समय में महर्षि पराशर के उसी परम भक्त लुंघू शनोड़ी की देह में दिव्य शक्ति ने प्रवेश किया। देवी शक्ति के बल पर लुंघू शनोड़ी आलौकिक आवेश में आकर झील में जा कूदा। चार पांच दिन बीत गये। उसका कोई पता न रहा। सबने यही समझा कि वह झील में मौत को प्राप्त हो चुका है। पर सात दिनों के बाद लुंघू शनोड़ी एक हाथ में भैंस का सिर लिए और दूसरे हाथ में जलता धूप पात्र पकड़े झील से बाहर आ निकला। झील का पानी नीचे उतरना प्रारम्भ हुआ और अपनी पूर्व स्थिति पर आ पहुंचा। लुंघू शनोड़ी जब घर पहुंचा तो वहां उसकी अन्तिम कर्म क्रिया की जा रही थी। गूर के जिंदा आ पहुंचने पर हर्ष का पारावार न रहा। कर्म-क्रिया को छोड़ वहां इकट्ठे हुए लोग बाजे-गाजे के साथ पराशर झील आ पहुंचे और यहां देवजग का आयोजन किया। ज्येष्ठ मास में यहां देव वरनाग का बढेहर मेला उसी उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

महर्षि पराशर के प्रति इनके उपासक जनों का अटूट विश्वास है। इनकी दृष्टि में ऋषि पराशर सर्व सिद्धि प्रदायक है। उपासकों की सच्चे मन से ऋषि शक्ति पर पूर्ण आस्था रखते हुए की गयी मनौती ऋषि कृपा से अवश्यमेव सिद्धि को प्राप्त होती है। यदि ऋषि की शक्ति पर किञ्चित भी सन्देह हुआ तो वह अनर्थ का कारण बन जाता है। इस सम्बन्ध में एक जनश्रुति है कि किसी समय कोई स्त्री सन्तान प्राप्ति का वरदान लेने ऋषि पराशर के दरबार में पहुंची। झील में स्नान करते हुए उसी स्त्री ने दो लौंग (नाक के आभूषण) झील में इस

आशा से समर्पित किए कि उसके जुड़वां पुत्र हों। स्त्री की शुद्ध अन्त:करण से की गयी प्रार्थना महर्षि ने स्वीकार कर ली। एक वर्ष के भीतर ही उस स्त्री ने दो अति सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। जब बालक बड़े हुए तो वह स्त्री फिर किसी पर्व पर यहां पहुंची। इस बार यहां आकर उसके मन में ऋषि के वरदान पर सन्देह उत्पन्न हुआ। वह उसी स्थान पर स्नान करने गयी जहां उसने दो लौंग फेंके थे। वह वहां सोचने लगी कि जुड़वां पुत्र तो मेरे भाग्य में थे, लौंग मैंने व्यर्थ में ही फैंके। महर्षि की शक्ति का चमत्कार कि ज्यों ही स्त्री ने पानी के लिए बर्तन झील में डाला, दोनों लौंग बर्तन में वापिस आ गये। अब तो देव पराशर की चमत्कारिणी शक्ति को भूली वह स्त्री प्रसन्न थी। परन्तु इस सन्देह का परिणाम हुआ कि वह यहां से घर भी नहीं पहुंच पाई थी, उसके दोनों पुत्र मृत्यु के मुंह जा चुके थे। वह बहुत पछतायी किन्तु, 'अब पछताये क्या होता जब चिड़िया चुग गयी खेत।'

महर्षि पराशर के श्री चरणों में पराशर झील पर पराशर जन्मोत्सव के रूप में भादों मास के शुक्ल पक्ष ऋषि पंचमी को 'पांजू' का मेला मनाया जाता है। पांजू शब्द पंचमी शब्द का ही परिवर्तित रूप है। पांजू में बाहन्दी से 'खारा' नाम से विख्यात पराशर ऋषि का रथ यहां लाया जाता है। हलगढ़ का गौहरी देवता प्रतिवर्ष तथा देवता चण्डोही और वरनाग तीसरे वर्ष इस मेले में सम्मिलित होते हैं। आषाढ़ संक्रान्ति को यहां देव समागम पर्व के रूप में सरानाहुली (कुल्लुवी में सौरा माहुली) नाम से एक विशाल मेला लगता है। जिसमें सनोर, बदार, उतरसाल तथा सिराज क्षेत्र के २५-३० देवता यहां पधारते हैं। पांजू और नाहुली मेले में मण्डी जनपद के अतिरिक्त कुल्लू के महाराजा और खोखण क्षेत्र के लोग भी भारी संख्या में यहां आते हैं। एक तीसरा मेला फसली त्यौहार के रूप में (काशी मेला) के नाम से वहां बैशाख मास में होता है। इस मेले की तिथि का निर्धारण प्रति वर्ष प्रथम वैशाख को बाहन्दी में देवता और देव पुरोहित के सह-परामर्श से विशेष विधि द्वारा किया जाता है। इस मेले में देव खारा बाहन्दी, देव चण्डोही भटवाड़ी, देव वरनाग शनोड़, देव गौहरी हलगढ़ प्रतिवर्ष पराशर ऋषि के आश्रम में उपस्थित होते हैं। तीसरे वर्ष नीसू की देवी पड़ासरी (पराशरी) भी इसमें सम्मिलित होती है। १९ बैशाख को पराशर आश्रम में 'विशी' का मेला लगता है। विशी मेले में मैहणी, शिवा और नेऊल की देवियां यहां पधारती है। ज्येष्ठ संक्राति को यहां पकोरी का मेला मनाया जाता है। पकोरी मेले में देवता के रथ कोई नहीं आते केवल देवता पराशर के शुरन भण्डार का बाजा लाया जाता है। चैत्र और आश्विन नवरात्रों में यहां देवी-पाठ एवं हवन यज्ञ करने की नियमित प्रथा है। दोनों नवरात्रों में अन्तिम दिन देवता सुखदेव (शुकदेव) ग्राम थटा यहां लाये जाते हैं। और वही नवरात्रों में कार्यविधि का समापन कराते हैं।

पराशर ऋषि के इन मेलों में देव-भारथा, देव-खेल की जीवन्त सांस्कृतिक परम्परा के दर्शन आज भी सुलभ हैं। पांज़ो, 'नाहुली' और 'काशी' मेले में पहाड़ी वाद्य वादनों की लोक माधुरी पर लोक नृत्य की धूम से सारा वातावरण झूम उठता है। जन-मानस के हृदय-पटल से ऋषि पराशर के प्रति अटूट आस्था के स्वर मुखरित होते हैं। जैसे एक लामण बाह्मणु उल्लेखनीय है :—

**घनै घनै म्हारै देऊआ पड़ासरा, घनै सौरे री धारा।**
**चार कुण्ठा न पौहरा तेरा, सभी रा एक स्हारा।।**

हमारा देवता पराशर महिमावान् है और महिमावान् है पराशर झील की धार ऋषिवर चारों दिशाओं में तेरा ही पहरा है। सभी को तेरा ही एक सहारा है।

□

# भाणूं का झेड़ा

प्रकाश चन्द्र धीमान्*

झेड़ा गाथा हमारे लोक-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी रही है। इसका इतिहास से सीधा संबंध तो है ही कहीं-कहीं इसमें वर्णित घटनाएं हमें इतिहास से भी ज़्यादा जानकारी देने में सक्षम हैं।

इधर बैहना (बल्हघाटी) में निरन्तर प्रयासों के फलस्वरूप मुझे झेड़ा गाथा के अन्तर्गत कुछ ऐसी सामग्री मिल रही है जो इस क्षेत्र के साथ-साथ मंडी ज़िला की अत्यंत प्राचीन घटनाओं को बड़े सजीव ढंग से सबके सामने रखने में पूर्णतया सक्षम है तथायह जानकर तो कोई भी दंग रह जाएगा कि सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश इन गाथाओं का विषय रहा है। कुल्लू, कांगड़ा, सुजानपुर-टीहरा, बिलासपुर,सुकेत व सिरमौर के राजाओं-वज़ीरों की शौर्य एवं युद्ध तथा अन्य गाथाएं भी प्रकाश में आई हैं। इनमें मानसिंह, घमण्डचंद, अमरसिंह गुलेरिया, तिक्खू मुकामी, गोपीचन्द,पम्मे बज़ीर, भाणूं, जगतसिंह पठानियां, एवं सिरमौरिया राजा का झेड़ा प्रमुख है।

यहाँ मैं एक ऐसे व्यक्ति के झेड़े को ले रहा हूँ जो न राजा था न वज़ीर। बल्कि एक वज़ीर दुग्गल (दुगला) का बेटा था। उसका नाम भाणू था। भाणूं का बापू दुग्गल मंडी के किस राजा का वज़ीर था, इस बारे स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है। विनोद हिमाचली अपनी पुस्तक 'मण्डी राज्य की कहानी' के पृष्ठ ११३ पर लिखते हैं, 'राजा जालिम सैन (१८२६ ई. से १८३९ ई. तक) ने क्रमवार माही, दुग्गला और अनंतराम को अपना प्रधान वज़ीर नियुक्त किया पर वह इससे पहले राजा ईश्वरी सेन (१७८८-१८२६ ई.) का वज़ीर रहा हैं।

उपर्युक्त पुस्तक में इस संबंध में कोई जानकारी नहीं है। लेकिन 'भाणूं का झेड़ा' स्वयंमेव दुग्गल वज़ीर के चरित्र पर प्रकाश डालता है और दुग्गल को ईश्वरी सैन का ही वज़ीर सिद्ध करता है। कहते हैं कि ईश्वरी सैन के समय में मण्डी में चेचक का भयंकर रोग फैला था। समस्त जनता में त्राहि-त्राहि मच गई थी। राजा ने जनता को इस रोग से छुटकारा दिलवाने हेतु छोप्पे (टीके) बगैरह लगवाने का प्रबंध किया। नदौण से सौंकले (टीके इत्यादि लगवाने वाले) बुलवाये थे। जैसा कि वर्णित है :

**हो मुल्खा राजा तेरे ठण्डिया हाईयां ओ धाड़ा! छोपा कराया**
**राजा बोले ना ईश्वरी सैणां लैणां छोपा छपवाई**
**लैणे सौंकले आस्सा सदाई लदौणां रे राजे सौंकले सादे डेरे पौंदे आए।।**

टीके लगवाने वाले बारी-बारी से टीकों हेतु मण्डी के सभी नौणों का पानी प्रयोग करते हैं। अन्ततः मण्डी के मशहूर जचूं नौण का पानी उपयुक्त बैठता है। लोक कलाकार ने इस भावना को अग्रलिखित शब्दों में बड़े सुंदर ढंग से कुछ यूं व्यक्त किया है :

*बैहना (बल्हघाटी), टिक्कर-१७५००६, मण्डी (हि.प्र.)

सारे सैहरा रे जिने नौंण जपे, जंचू जपया नीं जावे
जंचू रा नौंण भला पणाहयांद, पाणी उबली आवे
होजी हो भरयाना लोटा एक्क, बहणों री डाली अंदर बेढ़ेयो लई जावे !!

पहला छोपा राजा के महल में रोगी व्यक्तियों को लगाया जाता है तो दूसरा दुग्गल वज़ीर के घर में। फिर बारी-बारी से समस्त राज्य के रोगियों को टीके लगाए जाते हैं :

पैहला छोप्पा ना अंदर बेढ़ेया, फेरी परजा जो सारे
दूज्जा छोप्पा ना दुग्गले रे घरा, फेरी परजा जो सारे

इस प्रकार यह तो स्पष्ट हो ही गया कि दुग्गल एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। लेकिन निःसंदेह यह भी कहा जा सकता है कि वह ईश्वरी सैन का ही वज़ीर था और उसे मंडी राज्य में वज़ीरों के समान सम्मान प्राप्त था। इसी कारण राजा के परिवार के सदस्यों के उपरांत उसके ही घर की खबर ली गई थी।

भाणूं जो चेचक (पनयाले) से बुरी तरह ग्रस्त था को ही राजा ने सर्वप्रथम टीके लगवाने को कहा। लेकिन बीमारी के कारण भाणूं का दिल टूट चुका था। उसके जीने की तमन्ना बिल्कुल मर गई थी। राजा व वज़ीर दोनों ने उसके ऊपर काफी दबाव डाला लेकिन वह किसी भी प्रकार से टीके लगवाने हेतु राजी नहीं हुआ :

हो जी हो राजा बोले ना ओ सुण भाणूआ हात्थ लैवा छपवाई,
हात्थ काहे को छोपणां राजा मन्ने मेरे कालड़ी होए !
बापू तेरा बोले सुण भाणुंआ हात्थ लैणा बे छपवाई,
हात्थ काहे को छोपणां बापू काल घूमीरा मेरा आई !!

इधर समस्त रोगियों को टीके दिए जा चुके। सभी ठीक होने लगे। भाणू टस से मस नहीं हुआ। उसे ज्वर ने घेर लिया और बिरसू (वैशाखी) से अगले दिन काल रूपी सांप ने उसे डंस लिया। वह इस संसार से विदा हो गया लेकिन लोक कवि ने उसे अभी भी जिन्दा रखा है, निम्न लाइनों में :

सज्जा हात्थ ना जिने मड़दे छपवाया बायां नारिए छपवाया
सात्त सूइया न मड़दों साहरदिया लोधा-लोधा कराया ।
परजा तेरी नाहती-धोती भाणुंओ निकले नकाले।
ओ बिरसू री बाहिया ध्याड़े त्रयाहिया दोता भाणुंओ जर गया आई
ओ बिरसू री बाहिया ध्याड़े त्रयाहिया दोता भाणुं काल़ वंस हुई जावे ।

भाणूं की मौत से घर में हाहाकार मच गया। इसकी दोनों नौजवान पत्नियां मगनू व सगनू दहाड़ें मार-मार कर रोयीं। वे बहुत सुंदर थीं। अब उन्होंने भी मरना ही अच्छा समझा। सौभाग्य से उसी दिन अर्थात् २ वैशाख को टिक्कर का मेला था, वे अपने ससुर-सास से मेले में जाने हेतु हठ करने लगीं :

ओजी ओ दूहें लाड़ियां तेरी हंस्सा-बाग्गा री जोड़ी
देया-देया सासुर गैहणे म्हारे आस्सा टिक्करा री जातराओ जाणां
सासू तहारी बोले लाड़ियो बैठी खावा रजगीर ।

**कंद म्हारा नां उठी चलीरा आस्सा काहे को रैहणां**
**ओ सोहरा! तहारा बोले सुणों लाड़ियो बैठी खावा रजगीर।**
**कंद म्हारा नां उठी चलीरा आस्सा.....।।**

स्पष्ट है कि वे मेले का बहाना बनाकर रास्ते में ही अपने को खत्म करना चाहती थीं। हालांकि सास-ससुर सभी ने उन्हें ऐसा करने से रोका। सास को अपनी प्यारी-प्यारी सुंदर बहुओं से अंतिम बार मिलते समय हार्दिक दु:ख हो रहा था। वह आंखें ज़ार-ज़ार रो रही थी। लेकिन परम्परानुसार अथवा प्रेम प्रकट करने हेतु मगनू-सगनू भाणूं की अर्थी के साथ-साथ हो गईं :

**सास्सा नूहस्सा नां मिलदी लग्गी नैण भरी-भरी रोए,**
**ओजी चलदी-चलदी ना जिन्हें देहल़ बांदी नैण भरी-भरी रोए**
**होजी हो आग्गे-आग्गे नां बमाणं चलदा ओ पीछे भाणू री दूहें लाड़ी**

बनीरड़ी के सेमल के नीचे मगनू-सगनू की माताएं मिलने आती हैं। उन्हें भी रोकना चाहिए था। लेकिन माताओं ने उन्हे सती होने हेतु प्रोत्साहित किया। कैसी विडम्बना है? गौर फ़रमाएं :

**हो बणिरड़िया रे सिम्बल्ा हेठ मावा मिलदी आई**
**खरी किती ना सुणों बेटियो सती चली तुस्से जावा ।**

मोतीपुर में शंख ध्वनि होती है तो मण्डी की समस्त जनता की आंखें नम हो जाती हैं। सभी भाणू के मरने का अफ़सोस मनाते हैं और सारा शहर 'राम नाम सत है' की करुण ध्वनि से गूंज उठता है :

**हो जी हो मोतीपूरा ना संख बोलया परजा काहल़ी होये नां**
**सारे सैहरा रे जिनें देवते सौरे ओ रामे-राम ध्याया ।**

इस प्रकार बैहना से ऊपर काटी के नज़दीक गांव किप्पड़ के निवासी दुग्गल वज़ीर के लड़के भाणूं का दु:खद अंत हो जाता है। लेकिन टिक्कर का मेला जो अब भी उसी दिन मनाया जाता है, सदा-सदा यहां की स्थानीय जनता व मण्डी के निवासियों को 'भाणू' की याद दिलाता रहेगा। □

# पारम्पारिक मुखौटा निर्माण कला : एक सर्वेक्षण

नरेन्द्र अरुण'*

अलग-अलग नामकरण 'मुख', 'मुखौटा' 'मोहरा', 'मोयरा', 'मुहरा' निष्पदान कलाओं में हमारी सांस्कृतिक परम्परा का प्रतीक है। वस्तु निष्ठ सत्य तो यह कि मुखौटा की परम्परा मात्र हिमाचल प्रदेश में ही नहीं, अपितु भारत वर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में आज भी जीवित है। हिमाचल प्रदेश के अतिरिक्त केरला, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, बंगाल तथा राजस्थान आदि प्रान्तों में मुखौटों का प्रयोग मेलों महोत्सवों और तीज त्यौहारों पर वर्ष भर, किसी न किसी समय निर्धारित तिथियों पर होता ही रहता है। वास्तव में मुखौटों के पीछे निश्चित ही एक प्रयोजन निहित है जिसका सीधा सम्बन्ध किसी भी प्रान्त की सांस्कृतिक थाती से है। विभिन्न प्रान्तों में मुखौटों का प्रयोग लोक नृत्यों एवं पारम्परिक लोक नाट्यों में होता रहता है। अधिकांश मुखौटे पौराणिक एवं धार्मिक आख्यानों के चरित्रों को कथानकों में प्रस्तुत करते हैं। भारतवर्ष में इन मुखौटों के अधिकांश प्रयोग का सार गर्भित एवं सूक्ष्म विवरण इस प्रकार है—

१. राजस्थान में गबरी नृत्य नाटिका में।
२. महाराष्ट्र में सौंगी नृत्य के लिए।
३. दादर हवेली में कोशिका नृत्य में।
४. गोवा में कार्निवाल के लिए।
५. मथुरा की राम लीला में।
६. पश्चिमी बंगाल में छाऊ नृत्य के लिए।
७. उड़ीसा में शोला और साहीजलरा में।
८. केरला में कृष्णाट्टम, कोडीयाट्टम, मोहनीयाट्टम शैली नृत्यों के लिए।
९. बिहार में छाऊ नृत्य के लिए।
१०. आन्ध्र प्रदेश में 'नीमाल-कुष्टा' शैली के निमित्त।
११. हिमाचल प्रदेश में लोक-नृत्यों एवं लोक-नाट्यों में।

कार्यशाला में निर्मित मुखौटों को पहने कलाकार

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि मुखौटा परम्परा समस्त भारत में प्राचीनकाल से प्रचलित है और मुखौटा शिल्पियों ने आज भी अपनी कला की साधना के बल पर उसे जीवित रखा है। भारतवर्ष ही नहीं बाहर के देशों में भी मुखौटा संस्कृति जीवित है और हमारे सीमावर्ती प्रदेशों, चीन, तिब्बत और नेपाल में भी मुखौटों का अपना पारम्परिक मुंह बोलता इतिहास है।

स्मरणीय है कि इन मुखौटों के भीतर ग्राम्य परिवेश की पारम्परिक कला झलकती है। मुखौटे

*१६/१ बालूगंज, शिमला-१७१००५ (हि.प्र.)

सांस्कृतिक संचेतना और नव जागरण प्रतीक होते हैं। इनमें जनजातीय क्षेत्र की सांस्कृतिक मान्यता मुखारित होती है। आज भी पारम्परिक निष्पादन कला को मुखौटा संग्रहालयों में सुरक्षित रखने की आवश्यकता है।

भारतवर्ष में स्थापित सांस्कृतिक क्षेत्र मुखौटा कला के लिए सजग और प्रयत्नरत हैं कि इनका संरक्षण किया जाए और इन्हें सुरक्षित भी रखा जाए। इतना ही नहीं हमारे भारत वर्ष के सास्कृतिक केन्द्र पारम्परिक निष्पादन कला के कलाकारों को समोचित प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए एवं उन्हें आजीविका के साधन जुटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अस्तु इसी महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए भारतवर्ष के पश्चिमी क्षेत्र सांस्कृति केन्द्र उदयपुर (राजस्थान) तथा हिमाचल प्रदेश कला संस्कृति और भाषा अकादमी के संयोजन से हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला की बिन्दुराज धर्मशाला में पारम्परिक मुखौटा निर्माण कार्यशालाआयोजन २५ अगस्त से ५ सितम्बर १९८९ तक किया गया। इस कार्यशाला में हिमाचल प्रदेश के बीस तथा शिल्पकारों के अन्तर्राज्यीय आदान-प्रदान योजना के अन्तर्गत पूर्व क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र कलकत्ता से दो कलाकारों ने सक्रिय भाग लिया। पन्द्रह दिवसीय इस कार्यशाला में लगभग अस्सी से अधिक विभिन्न शैली के मुखौटों का निर्माण किया गया। इस कार्यशाला के सफल आयोजन का मुंह बोलता चित्र था, भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा सुनियोजित निर्मित मुखौटों की चार दिवसीय वाई.डब्ल्यू.सी.ए. हाल में सुन्दरतम एवं आकर्षक प्रदर्शनी।

पारम्परिक मुखौटा निर्माण कार्यशाला में हिमाचल प्रदेश के जिन कलाकारों ने भाग लिया उनकी जानाकारी इस प्रकार है :—

(क) ज़िला चम्बा से श्री दास ने लोक नाट्य हरणातर के मुखौटों का निर्माण किया।

(ख) ज़िला किन्नौर से सर्वश्री उरगिन, सुन्दर लाल, रुबी लाल, छेरिंग नामग्याल तथा दोरजे ने देवी-देवताओं और बौद्ध धर्म के मुखौटे बनाए।

(ग) जिला कुल्लू के कलाकारों की भी कार्यशाला में महत्वपूर्ण भूमिका रही। बिसुराम, मस्त राम, चेपा राम, केवली राम, सेबी राम, अमर चन्द तथा ताबे राम ने लोक नाट्य तथा लोक नृत्य सम्बन्धी मुखौटों का निर्माण किया।

(घ) जिला सिरमौर से सर्वश्री यज्ञ दत्त, देवी राम, श्याम सिंह तथा जमणू राम ने भाग लिया और इन्होंने शीटू-बागटू नृत्य तथा स्वांग के मुखौटे बनाए।

(ङ) ज़िला हमीरपुर से श्री कृपाराम और विजय कुमार ने जन्माष्टमी सम्बन्धी मुखौटों का निर्माण किया।

(च) ज़िला शिमला से भाग लेने वाले एकमात्र कलाकार थे श्री ओम प्रकाश जिन्होंने जानवरों के मुखौटों का निर्माण किया।

(छ) ज़िला पूर्णिया (पश्चिम-बंगाल) के दो कलाकारों श्री गोपाल चन्द्र तथा सुधांशु सूत्रधार ने पूर्लिया छाऊ नाच के लिए मनमोहक मुखौटे बनाए।

पन्द्रह दिवसीय इस कार्यशाला के मध्य मुखौटा निर्माण करने वाले इन कलाकारों से व्यक्तिगत विचार विर्मश के समय मुखौटों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की और उन्होंने स्पष्ट किया कि हिमाचल प्रदेश में विशेषकर मुखौटों का निर्माण निम्नलिखित पदार्थों से होता है :—

(१) लकड़ी के मुखौटे—इन मुखौटों के निर्माण के लिए अखरोट, रखौल, खनोर,मंदर, ठांगी, तथा ब्रास आदि का अधिकांश प्रयोग किया जाता है।

(२) लुगदी के मुखौटे—इन मुखौटों के निर्माण में चिकनी मिट्टी, कपड़ा, रुई, धूप, हीरा, मूंगा, फिरोज़ा, शाना आदि प्रयोग में लाए जाते हैं।

(३) धातु के मुखौटे—कांसा, तांबा, पीतल, चान्दी, सोना तथा अष्टधातु से देवी-देवताओं के मुखौटों का निर्माण किया जाता है।

(४) मिट्टी के मुखौटे—इन मुखौटों में चिकनी मिट्टी और रुई का प्रयोग होता है।

(५) खाल के मुखौटे—इन मुखौटों के निर्माण में बाघ, भालू, गीदड़, पालतू जानवर की खाल का प्रयोग किया जाता है।

मुखौटा निर्माण कार्यशाला और प्रदर्शनी के आयोजन ने हिमाचल प्रदेश के सांस्कृतिक जन-जागरण की झांकी प्रस्तुत करते हुए जिज्ञासुओं को सांस्कृतिक तीज त्यौहारों के सम्बन्ध में जो जानकारी दी उसका ब्यौरा सूक्ष्म रूप से इस प्रकार है :—

(क) ज़िला चम्बा में हरणातर और होली के समय मुखौटों का प्रयोग होता है।

(ख) कुल्लू में फागली नृत्य के समय

(ग) सिरमौर में दीवाली, बूढ़ी दीवाली और देओठन के समय

(घ) आऊटर सिराज (कुल्लू) में निरशु नृत्य के लिए

(ङ) शिमला में करयाला के स्वांग के निमित्त

(च) किन्नौर में छम्ब नृत्य के लिए

(ज) हमीरपुर में रामलीला जन्माष्टमी नृत्यों पर तथा

(झ) सोलन में माल पूर्णिमा के सोलह दिवसीय करयालों पर।

हमारे तीज त्यौहारों और सांस्कृतिक पर्वों पर प्रयुक्त होने वाले इन मुखौटों की अपनी ही सांस्कृतिक परम्परा है। इन परम्पराओं के साथ स्वतः जुड़ जाते हैं जन विश्वास यथा लाहुल स्पिति के जन विश्वास के आधार पर बौद्ध धर्म में छोए क्युङ (धर्मराज), गुरु रिन्पोछे (पद्म सम्भव) तथा छाडना दोर्जे (वज्रपाणि) के मुखौटे लोसर त्यौहार की मान्यताओं के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुखौटा परंम्परा सचमुच हमारी पुरातन संस्कृति को संजोए हुए है तथा हमारी हिमाचल प्रदेश कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, और भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश, डॉ. बंशीराम शर्मा सचिव तथा निदेशक सी.आर.बी. ललित के मार्ग दर्शन में कला संस्कृति और साहित्य के संरक्षण और विकास के निमित्त कलाकारों और साहित्यकारों को समोचित प्रोत्साहन प्रदान कर रही है। हिमाचल प्रदेश को अकादमी और भाषा विभाग से बहुत कुछ आशाएं हैं। □

# हिमाचली लोकनाट्यों का शिल्प

डॉ० ओम प्रकाश सारस्वत*

शिल्प ही किसी रचना के महत्त्व का कारण है फलतः रचना के व्यक्तित्व एवं प्रतिष्ठा के पीछे शैल्पिक विधि एक प्रमुख विवेच्य अभिकल्प है। शिल्प रचना के स्वरूप को, नाम और रूप की छवि से अलग अस्तित्व प्रदान करता है और यदि ऐसा न होता तो साहित्य की समस्त विधाओं का चेहरा एक-समान ही रहता; उनका एक-सा ही रूप/स्वरूप होता।

जब से मनुष्य की सुसंस्कृत चेतना ने सक्रियता ग्रहण की है तब से लोक रंग और शिष्ट रंग की दो सीमाएं निर्धारित हुई हैं। शिष्ट रंग विधि-निषेध के नियमों में आबद्ध होने के कारण स्थिर रूप हो गया जबकि लोकरंग प्रतिक्षण नवीन होते लोक से जुड़ा होने के कारण लोकजीवन की अनुभूतियों और परिस्थितियों से निरन्तर गतिमान रहा। यही कारण है कि लोकरंग के शिल्प में युग-गति के अनुरूप विकास होता रहता है।

शिल्प, अंग्रेज़ी के टेकनीक़ (Techenique) का हिन्दी-शब्दान्तर है। 'स्ट्रक्चर' तथा 'फार्म' इसके अन्य पर्याय हैं। आज, अधिक प्रचलित शब्द 'फार्म' है। 'फार्म' का शब्दार्थ 'रूप' है। शिप्ले (लोकरंग के मर्मज्ञ) ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि 'कथावस्तु वह है जिसके द्वारा वस्तु तैयार होती है और 'रूप' वह है जो इसको वैसा बनाता है जैसी वह है। अरस्तू के चिन्तन अनुसार रूप केवल आकार ही नहीं है अपितु आकार देने वाली क्रिया भी है। स्पष्ट है रूप ही 'टेकनीक' नहीं है अपितु रूप-विधि का द्योतक सही शब्द रूपाकार है।

**शिल्पविधि** लोकरंग में रूपाकार की यह शिल्प-विधि बड़े सहज स्वाभाविक ढंग से अभिशिल्पित है। शिल्पविधि के अन्तर्गत हम मुख्यतः पूर्वरंग, भाषा-भंगिमां, गान, नर्तन, वाद्ययन्त्र और वेषभूषा की चचा कर सकते हैं।

**पूर्वरंग** नाट्यशास्त्र में नाटक की चर्चा के प्रसंग में भरतमुनि ने लिखा है—**तत्र पूर्व पूर्वरंगः, सभापूजाततः परम्** अर्थात् किसी भी नाट्यकर्म के प्रारम्भ में 'पूर्वरंग' दिया जाना चाहिए। पूर्वरंग का अर्थ है—देवताओं और सभासदों/दर्शकों के प्रसादन/मनोरंजन के निमित्त किया जाने वाला प्राथमिक शुभकर्म। हिमाचली लोकनाट्यों (प्रायः सभी) देवताओं के प्रसादनार्थ तथा सामाजिकों को एकत्र करने तथा उन्हें मनोरंजन देने के निमित्त पूर्वरंग का विधान है। यह प्रक्रिया अनेक प्रकार से देवी-देवताओं (स्थानीय भी) सभासदों अथवा किसी इष्ट-अभीष्ट के आवाहन एवं रंजनार्थ, कई तरह के वाद्यों तथा ताल, नर्तन, गान एवं नान्दी के द्वारा सम्पन्न की जाती है। 'करयाला और भगत' लोकनाट्यों में यह प्रक्रिया 'जग जननी ज्वाला मुखी' आदि गान/कथनों से तथा कहीं 'गणगौरां' के स्मरण से प्रारम्भ होती है।

*अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पत्राचार निदेशालय, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला-१७१००५ (हि.प्र.)

पूर्वरंग के अन्तर्गत हिमाचली लोकनाट्यों में संस्कृत नाटकों की परम्परानुरूप नान्दीपाठ का प्रचलन है। जो लोग भारतीय लोकरंग में भी परिचय की प्रभावच्छाया या गंध ढूंढते हैं उन्हें अपनी परम्परा की महक से भी अवगत रहना चाहिए। 'नान्दी' के अन्तर्गत आशीर्वचन, किसी देवी/देव का स्तुतिगान आदि रहता है। नान्दी का शाब्दिक अर्थ है—जिससे देवता आनन्दित होते हैं—

नन्दन्ते देवताः यस्मात् तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।

**भाषाभंगिमा** शिल्पविधि में भाषा की अतिरिक्त उपादेयता है। भाषा ही वह तत्व है जो किसी रचना के निर्माण का उपादान कारण है। भाषा, रचना का शरीर और प्राण दोनों है। यहां शरीर से अभिप्राय शाब्दिक संरचना से है तथा आत्मा से आशय उसकी आन्तरिक शक्ति से। भाषा के बिना कुछ भी द्योतित/व्यंजित होने में असमर्थ है।

हिमाचली लोक नाट्यों की भाषा विभिन्न जनपदीय रंगरूपों के अनुसार अनुपयुक्त है। यहां हमारा अभिप्राय प्रान्त/प्रदेश की भिन्न-भिन्न भाषा/बोलियों के विशेलेषण से नहीं है अपितु वहां पर क्षेत्रीय लोकनाट्यों में प्रयुक्त भाषा-भंगिमा, भाषा-सामर्थ्य और भाषिक संरचना से है, जो किसी भी नाट्य रूप को आकार देती है और रंगकर्मियों और दर्शकों को भाव की एकतानता में बांध देती है। जाहिर है भाषा की भूमिका व्यापक एवं मेरुदण्ड की हैसियत रखती है।

कांगड़ा के 'भगत' लोक नाट्य में 'मनसुखा' पात्र की हाज़िर-जवाब उक्तियां और सिरमौर के करियाला नाट्य में साधुओं के प्रश्नोत्तर भाषा भंगिमा की प्रायः सभी संभावनाओं अर्थ सामर्थ्य, अर्थगाम्भीर्य, भावसंप्रेषण, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि के लिए उद्धरणीय हैं। इसी तरह 'भगत' नाट्य और 'चन्दरौली'के स्वांग में नारी पात्रों की भाषा अपनी लयात्मकता, मृदुता और उद्देश्य परकता में श्रवणीय है। वास्तव में भाषा ही वह तत्त्व है जो किसी भी नाट्य रूप को आकार और वाणी देता हुआ अपनी संवेदना में उसी प्रेषणीय बनाता है।

**गान** भारतीय नाट्य परम्परा में अथवा कहना चाहिए सम्पूर्ण भारतीय साहित्य परम्परा में काव्य; गीति, गायनकिंवा गान का सर्वाधिक महत्त्व है। गायन अथवा गान जहां हमारे कोमलतम भावों को स्वरलहरियों में रूपायित करता है वहां वह सभासदों/सामाजिकों के कोमलतारों को छेड़कर उन्हें झंकृत भी करता है। गायन में सभासदों को बांधने की शक्ति है। यहां मैं लोकनाट्यों में गायन के पहले 'गान' शब्द रखने के पक्ष में हूं क्योंकि 'गायन' शास्त्रीय शैली में ही प्रयुज्य है जबकि लोक में शास्त्रीयता से भिन्न गीतिपद्धति है, अतः यह 'गान' कही जानी चाहिए।

'गान' एक ओर जहां दर्शकों/सामाजिकों की रागात्मक चेतना को उद्‌बुध करता है वहीं दूसरी ओर वह नृत्य, अभिनय को भी गतिशील बनाता हुआ उसे संस्कारित करता है। 'गान' से लोक नाट्य, लोक के थोड़े रुक्ष, असंस्कारित स्वभाव से ऊपर उठकर कोमल एवं संस्कारित हो जाता है। हिमाचली लोक नाट्यों में स्वतन्त्र गीत-योजना के पहले अधिकांशतः सामूहिक गान या नृत्यगीतों का ही समायोजन है।

**नृत्य** लोक नाट्य, लोकानुरंजन का माध्यम है अतः इनमें 'नाच' की प्रमुखता है। हिमाचल का क्या, दुनिया का शायद कोई भी लोकनाट्य ऐसा न मिलेगा जिसमें नर्तन/नृत्य/नाच न हो। नाट्य शब्द

है ही नट् अभिनये धातु से निष्पन्न। अत: उसमें 'नाच' की अभिव्यक्ति समाहित है। नर्तन या 'नाच' अभिनय की एक रसता को तोड़कर दर्शक में हिल्लोल पैदा करता है। गीत/गान से प्रेरित या अनुचालित नृत्य या नाच कई-कई आकर्षक मुद्राओं में रूपायित होकर लोकरंजन का कारण बनता है। साहित्यशास्त्र में संस्करत नाच का नाम नृत्य है तथा स्त्री नाच का नाम लास्य। शिव नृत्य करते है और पार्वती लास्य।

**वाद्यन्त्र** गान और नाच को जीवन्त और प्राणवान् बनाने के लिए वाद्यन्त्रों की अतिशय अनिवार्यता है। मेरे विचार में जब तक किसी वाद्यन्त्र का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक गान को गतिशील और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए 'ताली' ही सर्वप्रथम वाद्य रहा होगा। एकाकी गायन में 'ताली' और 'चुटकी' का महत्त्व बहुविदित है।

यहां मैं वाद्यन्त्रों की संरचना प्रक्रिया में न जाकर उनके नाम संकेत तक ही सीमित रहूंगा क्योंकि जिन्होंने हिमाचल के लोकनाट्य देखे हैं, वे इन वाद्यों से परिचित हैं। हिमाचली लोकनाट्यों में **घनवाद्य**— जिनमें थाली (तसली), घुंघरु, घण्टी, करताल और चिमटा आदि हैं, **तालवाद्य**— जिनमें ढोल-ढोलक, खंजरी, नगाड़ा तथा डमरु आदि हैं, **हस्तवाद्य**— जिनमें शंख रणसिंगा, बांसुरी और शहनाई आदि प्रमुख हैं, तथा **तत्वाद्य**— जिनमें किन्दरी और सारंगी आदि परिगणित हैं। गीत/गान को सांगीतिक बनाकर नाट्य और परिस्थिति से प्रभावपूर्ण बनाने में समर्थ है और वाद्यों के कारण गान के प्रभाव में सघनता आती है।

वाद्य, स्वर, लय, ताल और गति (नर्तनगति) को न केवल सहयोग ही देते हैं अपितु ये नट और सामाजिकों के मनोभावों को भी उत्तेजित/उद्वेलित करते हैं।

**वेषभूषा** प्रत्येक नाट्यविधा अथवा मंचीयप्रस्तुति की विशिष्ट वेषभूषा होती है। यह वेषभूषा ही, सामान्य से दिखने वाले अभिनयकर्त्ता या नट को राजा-प्रजा, विदूषक-मनसुखा, साधु-गृहस्थी अथवा कोई भी पात्र बनाती है। भूमिकानुरूप वेष और भावानुरूप भूषा, अभिनेता उसके स्वरूप और अभिनय के प्रति विश्वासनीयता से मंडित करते हैं।

हिमाचली लोकनाट्यों में चरित्र/अभिनय की आवश्यकता और मांग के अनुरूप ही वेषभूषा का विधान है। यूं यहां की परिवेशगत आवश्यकता के अनुसार चूड़ीदार पायजामा, कुर्ता, टोपी, चोली, लहंगा वेषभूषा के सामान्य अंग है। विशेष नाट्यों/रंगोत्सवों में जिनमें कृष्ण, राम अथवा सत्यवादी हरिश्चन्द्रादि की लीलाओं, कथाओं, प्रसंगों को मंचित किया जाता है वहाँ पर स्थानीय और तत्कालीन वेषभूषा का प्रयोग स्वाभाविक है। वैसे विदूषकऔर मनसुखा आदि पात्रों की वेषरचना उनके किसी निश्चित रूपानुसार नहीं अपितु उनके स्वभाव अभिनय अथवा कार्य शैली के अनुरूप, निर्देशक के निर्देशानुसार रहती है जिस पर स्थानीय रंग अधिक हावी होता है। हास्य पात्रों की वेषभूषा हास्योत्पादक रहती है, रहनी भी चाहिए।

शिल्प, समय और नाट्य की मांग के अनुरूप स्वयं को विकसित करता है/ रचता है। हिमाचली लोकनाट्यों में वेषभूषा, भाषा और प्रस्तुति की दृष्टि से अब कुछ नया भी देखने को मिल रहा है जो उसके विकास का ही द्योतक है। □

# सोलन के लोक-गीत एवं लोक-नृत्य

ठाकुर जयकिशन सिंह*

लोक गीत साधारणतया किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं होते। क्योंकि इनका निर्माण किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं होता बल्कि जनसमूह द्वारा ही ये बनाये और ध्वनित किए जाते हैं। लोक गीतों के निर्माण का सम्बन्ध शब्दों की उत्पत्ति के साथ है। किसी-किसी व्यक्ति के गीतिबद्ध भाव जनभावों के अनुरूप हुए तो वह सहज में उसे अपना कर अपनी सुविधा अनुसार उसमें परिवर्तन कर लेता है। गीत के उसी संस्कार को लोक गीत की संज्ञा दी जा सकती है।

हिमाचल प्रदेश एक ओर जहां शान्त, ईश्वर-रत और ऋषियों तथा देवी-देवताओं की भूमि है, वहीं दूसरी ओर किन्नरों और गन्धर्वों का पुण्य स्थल भी है। उस प्रदेश में प्रकृति का एक-एक अंग थिरकता है, नाचता है और उसके एक-एक कण में मादकता है, जीवन है। किसी भी सुअवसर पर यहां के निवासियों के कण्ठों में स्वर लहरी तैरने लगती है और पांवों में थिरकन उत्पन्न हो जाती है। लोकगीत और लोक नृत्य पर्वतीय लोगों के जीवन के अभिन्न अंग हैं। अपने लोक-गीतों के सहारे यहां के लोग कठिन से कठिन परिश्रम को भी साधारण बना देते हैं। इनके गीतों की सुन्दर लय जब पर्वत की ढलानों, खड्ड-नालों के किनारे गूंजती है तो वातावरण अत्यन्त कोमल हो उठता है।

मेले, गीत और नृत्य जहां भारत में बहुत से लोगों के मनोरंजन के साधन हैं, वहां ये पहाड़ी लोगों के प्राण हैं। जहां हिमाचल के लोग प्रकृति की भव्यता, सुकोमलता, सौन्दर्य तथा रंगीनियों में खेलते हैं, वहीं वे इसके कठोर स्वभाव से भी दो-चार होते हैं। अपने मेलों में, गीतों में, नृत्यों में यहां का मानव अपने जीवन की तमाम विषमताओं और कठिनाइयों को भूल जाता है। संगीत की मदिरा उसे दु:खों से दूर ले जाती है।

प्रकृति के विशाल प्रांगण में, नीले आकाश की विस्तृत छाया में मनुष्य के जीवन के साथ-साथ उसका काव्य भी पनपता रहा, जिसे उसने आडम्बर रहित सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त किया। इसमें न तो छन्द शास्त्र का ध्यान रखा गया और न ही अलंकारों को जबरदस्ती भरने का प्रयत्न किया गया। उसे यदि आवश्यकता थी तो केवल लय की, स्वर लहरी की, भाव की और मादकता की। उसके गीतों में काव्य सौष्ठव बेशक न हो किन्तु वस्तु चित्रण तो है, जो उसकी अपनी संस्कृति को स्पष्ट करने में काव्य सौष्ठव से कहीं अधिक आवश्यक है। उसके अपने अलंकार, अपनी शब्द-योजना, अपने मुहावरे, अपनी गति और अपनी ताल है। उसके लोकगीतों में आदि मानव से लेकर वर्तमान समय तक की संस्कृति और उसके उतार-चढ़ाव का इतिहास बोलता है। उसके गीतों में जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे अति साधारण हैं तो असाधारण भी हैं। उनमें बर्फ सी ठण्डक तो है किन्तु साथ में गर्मी भी है।

*गांव बलोत, डाक० ओखरन बरास्ता धामी, ज़िला सोलन (हि. प्र.)

हिमाचल के गीतों की लहरी देवदार के वृक्षों से भी ऊंची उठ कर बर्फ से आच्छादित पर्वतों से टकराती है। यहां के गीतों में रस, पहाड़ के दामन में खिले हुए मनमोहक फूलों की तरह प्राकृतिक होता है। यहां के गीतों में स्वर जल प्रपातों और नदियों की कलकल तथा सुखद समीरों से मिलते हैं, जो प्रकृति ने तुष्ट हो कर उस प्रदेश को प्रदान किया है। हिमाचल के लोकगीतों के कितने प्रकार हैं इसका निश्चित ब्यौरा देना कठिन है क्योंकि लोकगीतों को प्रकार में बांधना लोकगीतों के सृजन-कर्त्ताओं की भावना को बांधना है। लोक-गीतों का सृजनकर्त्ता किसी विशेष विषय, रस, छन्द, अलंकार आदि में बंध कर अपनी रचना नहीं करता, बल्कि भावातिरेक उसके हृदय से जो उद्गार फूट पड़ते हैं वे ही कल-कल करते झरनों के साथ स्वर मिला कर वातावरण में बिखर जाते हैं और संगीत उन्हें समेट लेता है। पहाड़ों का लोकगीत सृजन-कर्त्ता जन्म से लेकर मृत्यु तक हास्य में, रुदन में, जीवन के प्रत्येक पहलु पर हमेशा सजग रहा है और उसकी ग्राम्य भावुकता ने सभी प्रकार के लोकगीतों को जन्म दिया। आदिकाल से ही पहाड़ के लोगों ने इस तरह लोक गीतों, लोक नृत्यों को पीढ़ी-दर पीढ़ी बरक़रार रखा। आज भी व्यापक स्तर पर ये लोक-गीत और लोक-नृत्य यहां के जनजीवन पर पूरी-तरह छाये हुए हैं।

सोलन जनपद के लोकगीतों और लोक-नृत्यों का भी अपना अलग महत्व व अस्तित्व है। यहां गाये जाने वाले लोक-गीतों और लोक-नृत्यों की एक झलक इस तरह है।

**लोका** -यह साधारणतय: विरह के भावों को दर्शाता है। ग्रामीण महिलायें पहाड़ों की ढलान पर घास काटते हुए और नदी-नालों के किनारों पर पशु चराते हुए लम्बी धुन में इस गीत को अकेली अथवा मिल कर गाती हैं। इसके लिए चीड़ के पेड़ और कलकल करते नदी-नाले अपनी धुन देकर और भी हृदय-स्पर्शी बना देते हैं। निःसंदेह लोका की लय हर सुनने वाले को अपनी ओर खींच लेती है। इसके बोल इस तरह से हैं:—

**सांझ के सलेलुये राम-रांम बोली जा,**
**यो ही हुन्दे ग्यानियां रे काम जी लोका।**

**अम्मा कुड़े मेरिये मूरखा खे दितिया,**
**देखी-सुणी बाळेया मेरा गळा जी लोका।**

**जिन्हां रे थे आसरे तिन्हें मुख मोड़ी ला,**
**कियां कट्टू सारा दिन जी लोका।**

**लोका रीआ छोहरिया जिउए थे बी प्यारिया,**
**तिन्हा पीछे छाडेया घर-बार जी लोका।**

**दिने काम लोका रा रैनी सोचा पड़िया,**
**कियां हुणा बालक बचार जी लोका।**

इस गीत का भाव कुछ इस तरह है कि नई ब्याही युवती अपने ससुराल में रह तो रही है किन्तु अपने पति का विछोह और सास-ससुर का कठोर व्यवहार उसे परेशान कर रहा है। सुबह-शाम सास

गाली-गलौच करती रहती है। इस पर परेशान होकर बहू कह उठती है कि आप लोग समझदार हैं। गाली देना, झगड़ा करना हमेशा उचित नहीं होता। सुबह-शाम आप लोगों को राम-राम बोलना चाहिए। समझदार लोगों का यही काम होता है। फिर वह युवती अपनी माता को मन ही मन याद करके कहती है कि ओ मां! मेरा विवाह मूर्ख-लोगों में करके आपने अच्छा नहीं किया। आप लोगों ने तो मेरा गला ही काट दिया है। मुझे जिनका आसरा था, उन्होंने भी अपना मुंह फेर लिया है। मैं कैसे अपने जीवन को व्यतीत करूं? पति भी मेरी ओर ध्यान नहीं देता क्योंकि उसे भी पराई स्त्रियां ही अच्छी लगीं और उनके पीछे उसने मुझे एक प्रकार से त्याग सा दिया है। दिन भर तो मैं व्यस्त रहती हूँ किन्तु रात को चिन्तायें मुझे घेर लेती हैं। कैसे मेरी युवावस्था व्यतीत होगी — कुछ समझ में नहीं आता।

**बाह्मणां रा छोहरू** यह लोक-गीत भी सोलन ज़िला का प्रसिद्ध लोक-गीत है। विरह के भावों को दर्शाने वाला यह गीत जहां मनोरंजन का साधन है, वहीं इसका एक-एक शब्द मन को छूने वाला होता है। गीत के बोल इस प्रकार हैं:—

**बाह्मणां रेया छोहरूआ बोलो**
**दिने कटेया तेरे आसरे मांऊआं**
**रात बोलो काटी रोई-रोई के**
**तैं बे कीती बेइमानियां .............**

**बाह्मणां रीये छोहरिये बोलो**
**बारा मेटड़े हाथड़ु मेरे आउंणा**
**तू बे जानी मेरिये ज़िन्दे ............**

**बाह्मणां रेया छोहरूआ बोलो**
**सारा दिन न्याहल्या मांऊआं**
**दिन छवी गोआ**
**तू बे बेईमान छोहरूआ ...............**

**बाह्मणां रीये छोहरिये बोलो**
**चिट्टे तेरे दान्दड़ु सुइने री फुलिया**
**मोही लैया मेरा दिलड़ु**
**तू बे जानी मेरिये जिन्दे ..............**

इस लोक-गीत का भाव इस प्रकार है कि ओ ब्राह्मण के बेटे तूने मुझ से प्रेम करके मुझे चिन्ताओं में डाल दिया है। दिन भर तो मैं तेरे साथ रही और इस तरह तेरे सान्निध्य में पता भी न चला कि दिन कैसे व्यतीत हो गया? लेकिन रात के सन्नाटे में जब अपने को अकेली और तुझ से

दूर पाया तो रात काटनी कठिन हो गई। मैं तेरी याद में रात भर रोती रही हूँ। उत्तर में ब्राहमण का बेटा कहता है कि हे ब्राहमण की सुन्दर बेटी! तू चिन्ता मत कर, वे दिन अब दूर नहीं जब मैं तेरा हाथ तेरे माता-पिता से मांग कर तुझे अपने घर ले जाऊंगा। लड़की कहती है, "मैं सारा दिन तेरी राह देखती रही। तू वादा करके भी न आया। तू तो बड़ा बेइमान है।"

**मोहणा** यूं तो मोहणा बिलासपुर ज़िले की एक सच्ची कहानी पर आधारित है किन्तु सोलन ज़िले में भी इस गीत को जनमानस ने अपनाया हुआ है। कहानी के अनुसार आज से लगभग 80–90 वर्ष पूर्व मोहन का बड़ा भाई बिलासपुर के राजा का भण्डारी हुआ करता था। उस समय बिलासपुर रियासत पर राजा विजयचन्द का शासन था। राजा अपने भण्डारी पर विशेष रूप से मेहरबान था। एक बार भण्डारी ने अपने किसी शत्रु का वध करा दिया। मामला बढ़ गया। भण्डारी के कुछ अन्य शत्रुओं ने राजा के कान भरने शुरू कर दिए। भण्डारी भी समझ चुका था कि उसे अब अपना बचाव करना है। अत: उसने अपने छोटे भाई मोहन को फुसला कर इस बात के लिए राजी कर दिया कि उसने (मोहन ने) ही खून किया है। मोहन सीधा सादा युवक था और अपने बड़े भाई को बहुत प्यार भी करता था। उसने कत्ल की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली। राजा को तो असलियत का पता था, उसने मोहन को काफी समझाया किन्तु मोहन अपने ब्यान पर अडिग रहा। भण्डारी जी तो बच निकले किन्तु भोले-भाले मोहन को फांसी का दण्ड मिला। लोगों को उसकी भरी जवानी पर तरस आया। इस दु:ख भरे हालात को देख कर लोक कवि की कलम बरबस ही दौड़ने लगी और उसने 'मोहणा' लोकगीत की रचना कर डाली। इस गीत के बोल इस तरह हैं:—

**तू नी दिसदा ओ मोहणा, तू नी दिसदा,**
**मयां माइये री कित्तिए तू नी दिसदा**
**तेरे फिकरे बे मोहणा तेरे फिकरे**
**मेरा दिल लग्या सुकणे तेरे फिकरे**
**आया मरना ओ मोहणा आया मरना**
**माइये री गलाइये पीछे आया मरना**
**तू नी बचदा ओ मोहणा तू नी बचदा**
**ओ राजेआ री कलमा ते तू नी बचदा**
**लग्या सुकणे ओ मोहणा लग्या सुकणे**
**ओ तेरा तोला-तोला खून मयां लग्या सुकणे**
**चढ़ेया फांसिया ओ लोको चढ़ेया फांसिया**
**देखो माइए री कित्तिए मोहण चढ़ेया फांसिया**

**गंभरी** सोलन जनपद में अन्य लोकगीतों की भांति 'गंभरी' भी एक प्रचलित लोकगीत है। इस गीत में एक ऐसी युवती की कहानी का चित्रण किया गया है जो युवावस्था में आवारा हो गई थी और झण्डु नामक व्यक्ति के साथ भाग गई थी। लोक कवि ने इस कहानी को इस तरह चित्रित किया है:—

ओ गंभरिये खाणा पीणा बे नन्द लैणी ..................
नाचणे खे-नाची गी बन्दके री गंभरी
ढोलकी बजाई गया भ्रूण्डु ..................
नाचणे खे नाची गई बन्दले री गंभरी
बाजा बजाई गया भ्रूण्डु ..................
नाचणे खे नाची गई बन्दले री गंभरी
चाड़िया बजाई गया भ्रूण्डु ..................

अच्छरी अच्छरी लोक गीत में भी लोक कवि ने एक ऐसी पहाड़ी युवती का चित्रण किया है जो किसी युवक के प्रेमपाश में जकड़ जाती है। गीत के बोल इस तरह से हैं:—

तू मोही ती अच्छरिये तू मोही ती बे,
उगुंआ रे लच्छमणे मुइये तू मोही ती बे।
जाई आउंणा अच्छरिये जाई आउंणा बे,
तातापाणी तीरथ न्हाई आउंणा बे।
क्या लैणा अच्छरिये क्या लैणा बे,
खोटे बे रपैये रा तां क्या लैणा बे।
चढ़ी चिला दे अच्छरिये चढ़ी चिला दे बे,
पक्की बेईमानी मांउआ तेरे दिला दे बे॥

गंगी बिलासपुर ज़िले के अतिरिक्त सोलन में भी 'गंगी' लोक गीत बहुत लोकप्रिय है। इस लोक गीत को मुक्तक रचना युक्त और हल्का-फुल्का गीत माना जाता है। इसमें प्रेम का अलंकारिक प्रदर्शन, अंग-प्रत्यंग का वर्णन, उलाहना आदि विषयों के बोल होते हैं। घास काटती महिलायें, मेले में जा रहे लोग और धान रोपते किसान मिल कर गंगी गाते समस्त क्षेत्र में देखे जा सकते हैं। हल्के फुल्के मनोरंजन का यह बहुत अच्छा साधन है। गीत इस प्रकार है:—

तेरी हट्टिया दे बिको पिस्ता,
एबे जिउणा कठण गया, तेरी शक्ला रे कोई नी दिसदा।
तेरे कोठे ते पइया तुल्लिया,
चिट्टे तेरे दान्दडु छोहरी
आइजा सुइने री लगवाई देऊं फुल्लिया।
पाणी भरी लैणा गागरू कन्ने
सड़का रे मोड़ टूटी गे
तेरे हरे-पीले चादरू कन्ने।
हरी चिला रे चीरे तख्ते
आखी रा इशारा जाणी जा
आसे जिभा थे नी बोली सकदे ..................॥

सोमसी

गंगी के हर बोल में अपना अलग-अलग विषय है और अलग-अलग सौष्ठव। ये रचनायें 'लोको' लोक गीत से दूसरे स्थान पर आती हैं, क्योंकि उस में कभी-कभी भाव गाम्भीर्य पाया जाता है।

**गिद्दा:**– लोक गीतों के साथ-साथ सोलन क्षेत्र में लोक नृत्य भी जनमानस के जीवन का एक प्रमुख अंग है। यहां पर लोकनृत्यों में गिद्दा और 'नाटी' प्रमुख हैं। क्योंकि सोलन ज़िला की सीमायें मैदानी क्षेत्रों के साथ लगती हैं इसलिए पंजाब के गिद्दे का भी यहां के लोगों पर प्रभाव पड़ा है। हां भाषा और शब्दों में कुछ भिन्नता अवश्य है। जनपद में शादी-विवाहों के अवसर पर प्राय: इसे गाया व नाचा जाता है। इसके बगैर विवाह समारोह को अधूरा ही माना जाता है। गिद्दे के बोल इस तरह से हैं —

**पाणी देई लैणा क्यारिया, छाड़नी-रे बुटे**
**ओ पाणी देई लैणा ..................**
**आसे देखी के गम खाई लैया, दाड़ू लोके लूटे**
**ओ पाणी देई लैणा ..................**

**मां कियां पहनणे ओ भरी-भरी जांदे सरीक**
**पारले बाजारे घड़े मेरे गोजरू ... पार ले ...**
**ओ घड़त लाइगा बरीक ... मां कियां पहनणे ...**
**पार ले बजारे घड़ी मेरी झांझरा ...पार ले ...**
**ओ घड़त लाइगा बरीक ... मां कियां पहनणे ...**

**क्या बे तेरे जिउए दे तू मांइगे बोल**
**तेरी-तेरी खातर खाणा बणाया ...**
**खाणा खाई गये होर .. क्या बे तेरे ...**
**तेरी-तेरी खातर पलंग बछाया ....**
**सौणा सोई गये होर ...क्या बे तेरे ...**

फोटो सौजन्य : सुखदेव शर्मा

गद्दी युवतियां एक लोकगीत प्रस्तुत करती हुईं

# करियाला : कुछ प्रश्न

डॉ० कैलाश आहलूवालिया*

देश के अन्य राज्यों की भांति हिमाचल में भी अनेक प्रकार की लोक नाट्य प्रणालियां प्रचलित हैं जो इस प्रदेश के जीवन की विविधता की प्रतीक हैं। लोक जीवन के बहुत निकट ये लोक-नाट्य ग्रामीण जीवन की पूर्ण झलक प्रस्तुत करते हैं। हिमाचल में करियाला, बांठड़ा, भगत, रास, स्वांग, हण्यान्तर, होरिङ्ग फो, हरण, बरलाज, धाज आदि अनेक लोकनाट्य प्रचलित हैं। ये नाटक भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न ढंग से अभिनीत होते हैं। मण्डी और उसके आसपास के कुछ क्षेत्रों में बांठड़ा, बिलासपुर में स्वांग तथा करियाला, किन्नौर में होरिङ्गफो, कुल्लू में हण्यान्तर, हरण, कांगड़ा ऊना और चम्बा में रास और भगत, शिमला और इसके आसपास के क्षेत्रों में करियाला आदि लोक-नाट्य खेले जाते हैं। कुल मिलाकर देखा जाये तो ये सब नाटक एक ही नाट्य विधा के अलग-अलग रूप हैं। प्रदेश में जिस प्रकार तरह-तरह की भौगोलिक स्थितियां, वेशभूषा और बोलियां हैं उसी तरह नाटक की भी भिन्न-भिन्न शैलियां हैं। पर सब का लक्ष्य एक ही है, लोगों का मनोरंजन करना, फ़सल कट चुकने के उपरान्त जब ग्रामवासियों के पास कृषि सम्बन्धी कोई विशेष काम नहीं रहते तो अपने मनोरजंन के लिये वे इन नाटकों का आयोजन करते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, करियाला सोलन, सिरमौर, शिमला तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में खेला जाता है। दीवाली के निकट जब शरद् ऋतु द्वार पर दस्तक देने लगती है तो कोई नाटक मण्डली अलाव (जिसे 'घियाना' भी कहते हैं) के इर्द गिर्द इकट्ठा होकर विधि विधान के साथ बिना किसी विशेष तैयारी और अभ्यास के अपना नाटक शुरु कर देती है। तितली की भांति नृत्य करती चंद्रावली एक अजब समां बांधने लगती है। जैसे असम में किसी खेत की मेड़ के साथ-साथ पेड़ के नीचे, कुएं या बावड़ी के इर्द-गिर्द वाद्ययंत्रों के बजने मात्र से नर्तकों और नर्तकियों के पांव थिरकने लगते हैं वैसे ही रणसिंगा, शहनाई, करनाल, ढोलक और हारमोनियम की मोहक ध्वनि से यहां के लोगों के हृदयों में सिहरन होने लगती है और पात्रों के मन मस्तक पर एक दैवी प्रभाव अंकुरित होने लगता है। दर्शकों के बीच से उठकर या छतों से, पेड़ों के पीछे से बालकोनियों से उछलते-फांदते, नगारे और शहनाई के मधुर स्वरों के मध्य साधुओं के वेश में अनेकों पात्र एक-एक करके अखाड़े में उतरने लगते हैं। घर का आंगन या पास का खेत खुले मंच का रूप धारण कर लेता है और पूरी-पूरी रात चलने वाला एक अपूर्व नाटक इस मुक्ताकाशी रंगमंच पर अवतरित हो उठता है।

कभी समय था—संभवत: बीस-पचीस वर्ष पूर्व, जब करियाला हिमाचल वासियों के जीवन का अभिन्न अंग था—लोग बड़े चाव से शरद् ऋतु की बांट जोहते थे और मण्डलियां सज संवर कर तथा वाद्ययंत्रों से लैस गांव-गांव चक्कर लगाने लगती थीं।ऐसा अब भी होता है पर अब केवल लोगों के निमन्त्रण पर ही ये मण्डलियां भ्रमण करती हैं, 'मन्नत' या अभिलाषा पूरी होने पर, देवता के प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त इन मण्डलियों को नाटक के लिये गांव में आमंत्रित किया जाता है। उसके निवास और खाने-पीने का अस्थाई

*६४ टी.एफ./४, नाभा हाऊस, शिमला-१७१००४ (हि.प्र.)

प्रबन्ध भी यही गांव करता है। अलाव के लिये लकड़ियां जुटाई जाती हैं और शरद की अंधयारी रातों को ज्योतिर्मय बनाने के लिये अखाड़े के गिर्द चारों दिशाओं पर जुगनू (देवदार की लकड़ियां) जलाये जाते हैं।अखाड़े का विधिवत् पूजन होता है।इसके बाद करियाला आरम्भ होता है। लोग—बच्चे, बूढ़े और स्त्रियां बड़े चाव से खेल के शुरु होने की प्रतीक्षा करते हैं। खुले आकाश के नीचे आग तापते या ठिठुरते असंख्य दर्शकगण इस नाटक को देखते हैं और रात-रात भर बैठे रहते हैं।हास-उल्लास में वे अपनी थकान भूले रहते हैं।

दर्शकों को नाटक के मध्य उठने-बैठने और आने-जाने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। वे सिगरेट, बीड़ी पियें, हुक्का पियें, खाना खाएं, अभिनेताओं पर फबती कसें इससे नाटक में कोई बाधा नहीं पड़ती और करियाल़ची (अभिनेता) दर्शकों के साथ बातें करते उनके प्रश्नों और शंकाओं का समाधान करते, हास परिहास के मध्य नाटक को स्वप्नों के पंखों पर उठाये व्योम की ऊंचाइयां तय करते जाते हैं। नाटक को कहीं भी रोक लें और प्रेक्षकों से गपशप कर लें, कोई फिल्मी गीत या भजन गा लें या किसी दर्शक के प्रसन्न होने पर उस द्वारा दी गई धनराशि का आभार प्रकट कर लें–यह अभिनेताओं के इख्तयार की बात है।

करियाल़ा में कोई क्रमबद्ध कथानक नहीं रहता। इसमें केवल भिन्न-भिन्न स्वांग होते हैं। अनुष्ठान और चंद्रावली के नृत्य के बाद प्रायः साधु का स्वांग शुरु होता है। 'हो हो' की ध्वनि करते छोटे-बड़े साधु वातावरण में नाटकीयता भरने लगते हैं। इसके उपरान्त दूसरे अनेक स्वांगों का प्रदर्शन किया जाता है जैसे—मेम साहिब का स्वांग, झुलना, बंगाले का स्वांग, दौऊ और दायन का स्वांग, रोहलू का स्वांग, चूरण वाले का स्वांग इत्यादि। इन स्वांगों का आकार और क्रम स्थान और समय के अनुसार बदल लिया जाता है। कहीं तो एक ही स्वांग घण्टों तक चलता है। संवादों को घटाना-बढ़ाना, छोटा बड़ा करना अभिनेताओं के वश में रहता है। लोगों की मांग के अनुसार यह घटाव-बढ़ाव होता रहता है—मतलब तो है हंसना-हंसाना और समय गुज़ारना।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी गम्भीर समस्या पर टिप्पणी करना अति आवश्यक हो जाता है। तब किसी सामयिक घटना या समस्या को लेकर कथोपकथनों का निर्माण किया जाता है। गांव के हाकिम को काल्पनिक कटघरे में खड़ा करके उसकी हंसी उड़ा, दिल की भड़ास निकाल ली जाती है। अब इसका पर्याय चाहे हम जर्मन के नाटकों में ढूंढें या यूरोप और अमरीका में यह विषय तो शोधकर्ताओं का है। दर्शक जो कुछ कह नहीं पाते अपने रोज़ के जीवन में, हाकिम को सिर्फ सलाम बजाते हैं। उसके मुंह पर उसके दोष उसे नहीं बता पाते। उनके लिये करियाल़ा ही एक ऐसा साधन है जहां वे पात्रों के माध्यम से अपनी बात खुल कर कर लेते हैं और कोई इसका बुरा भी नहीं मानता।

करियाल़ा में स्त्रियां भाग नहीं लेती_इसके कई कारण रहे होंगे जैसे कुछ रस (वीर, क्रोध, हास्य आदि) सम्भवतः स्त्रियां पर्याप्त ढंग से न दर्शा पाती हैं— ऐसा वयोवृद्ध कलाकारों का विचार रहा होगा या फिर रात-रात भर जाग कर नाटक करना स्त्रियों के वश की बात न हो अथवा कभी-कभार अभिनेताओं को जो अश्लीलता के छींटे उड़ाने की आवश्यकता अनुभव होती है, वह स्त्रियां करें ऐसा ग्रामवासियों को मान्य न होगा। ऐसे अनेक कारण हो सकते हैं पर इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि स्त्रियों को गौण समझ कर ऐसा किया जाता है। हिमाचल में स्त्री-पुरुष की असमानता वाली बात कुछ जंचती नहीं है। जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री जो पुरुष के अंग संग रहती है, कंधे से कंधा मिला के खेतों खलिहानों और बाग-बगीचों में काम करती है। वह रंगमंच पर पुरुष के संग इसलिये अभिनय न कर पाये कि पुरुष उसे हीन और गौण मानता है। यह बात

विश्वास योग्य नहीं लगती और फिर यही स्त्री दर्शक के रूप में पुरुषों के मध्य बैठी रहती है। रात-रात भर नाटक का आनन्द लेती है और थोड़ी-बहुत अश्लीलता को स्वभाविक मान कर आत्मसात् करती हुई अपनी स्वतंत्रता और असीम उदारता का परिचय देती है।

करियाला के लिये कोई मंच अपेक्षित नहीं, अखाड़े के पास ही कहीं एक अस्थायी नेपथ्य का निर्माण कर लिया जाता है जहां से पात्र तैयार होकर अखाड़े में प्रविष्ट होते हैं।कभी-कभी इनकी प्रविष्टि यक्षगान की तरह पर्दे के पीछे से भी होती है पर असल बात ही यह है कि करियाला सही अर्थों में लोक-नाट्य है आंगन-मंच है, मुक्ताकाशी थियेटर है। जिसके लिये न मंच दरवार है न विशेष वेशभूषा न साज सज्जा न मंच-सज्जा न ही आलेख अपेक्षित है। यह नाटक नुक्कड़ नाटक की भांति कहीं भी किसी समय भी खेला जा सकता है। शहनाई, नगारा, रणलिंगा, हारमोनियम, करनाल और ढोलक सब मिलकर तारों से जगमग करते गगन की छाया में एक काल्पनिक नाटक घर का निर्माण कर देते हैं और प्रेक्षक अपनी-अपनी जगहों पर बंधे इस मायानी नाटक घर में मंत्र मुग्ध हो बैठे रहते हैं। अनुष्ठानों के साथ एक के बाद एक अनेकों लोक प्रिय स्वांग, चटपटे संवाद और यहां वहां नाटियां, फिल्मी संगीत या नृत्य दर्शकों को वंशीभूत किये रहते हैं। यह नाटक प्राय: नो बजे (या रात का खाना खा चुकने के उपरान्त) शुरु होता है और प्रात: तक चलता रहता है। दूर-दूर के गांवों से दर्शक रण-सिंगा की ध्वनि से खिंचे चले आते हैं।

करियाला किसी आलेख पर आश्रित नहीं रहता न इसका कोई नाटककार है और न ही निर्देशक। पर एक नेता या मुखिया अवश्य होता है जिसे कटियालटू कहते हैं। घटनायें और संवाद तत्काल सोचे जाते हैं। संवादों में इतना व्यंग्य और बहाव रहता है कि लिखित नाटक में यह सब एक साथ हो पाना संभव नहीं है। 'तत्कालता' ही करियाला की विशेषता है।पता नहीं कौन सा प्रश्न, कौन सी बात तत्काल उठ खड़ी हो और तत्काल उसका उत्तर देना पड़ जाये, इसलिये अभिनेताओं को अपनी स्थितियां चुनने और संवाद घड़ने में पूर्णतया छूट रहती है।दर्शकों को हंसते-हंसाते पात्र जब थकान अनुभव करने लगते हैं तो प्रात:काल में अनुष्ठान के साथ नाटक का समापन कर दिया जाता है।

करियाला के सम्बन्ध में विविध प्रकार के प्रश्न उठते हैं—अश्लीलता और आलेख का प्रश्न ग्रामीणता और नागरिकता का प्रश्न, स्त्रियों को नाटक में सम्मिलित करने का प्रश्न और सिनेमा, टी.वी. को लेकर अनेकों प्रश्न पर इन सबसे बड़ा प्रश्न जो सदा अनकटा और बिना हिल किये रह जाता है वह है करियाला के नाटकीय शब्द का बचाव और पोषण।संगीत और नृत्य के कसाव भरे आलिंगन में बंधे नाटकीय शब्द की रक्षा कैसे हो और कौन करें, यह एक वृहद् पुरातन प्रश्न है एक विकट समस्या है। हमारे सामने नाटक का होना न होना तो समस्याएं उत्पन्न करता ही है पर इसके साथ जुड़ा है यह एक मुख्य प्रश्न कि शब्द,नाटक में कितना सशक्त है और इसी के प्रति हम सब इतने लापरवाह क्यों हैं।नाटक तो हो जाता है दर्शक इसे देखकर अपने-अपने घर चले जाते हैं। नाटक हर संध्या को जन्मता है और तभी मर भी जाता है। इसीलिये भावी संतति के लिये परम्परा रूप में शब्द की धरोहर को बचा कर रखना परम आवश्यक है। संवाद और शब्द नाटक के आवश्यक अंग है। मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूं जो मौन को ही एकमात्र नाटकीय भाषा मानते हैं। हां, वह एक अलग विधा जरूर है। अलग तरह के दर्शकों के लिये कालिदास या शेक्सपीयर के रंगमंच पर मूक अभिनय के लिये कोई स्थान नहीं और न ही यूनान अथवा रोम के नाटकों में।क्योंकि इन नाटकों के दर्शक को अपेक्षित था शब्द और आज भी करियाला का दर्शक अखाड़े के इर्द गिर्द खड़े होकर या बैठकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर या ठहाका

लगाकर दाद देने आता है, अपनी खामोशी तोड़ने आता है। संगीत सुनने आता है और नृत्य, संवादों और नाटकीय भाव भंगिमाओं के गहरे सागर में डूबने आता है। वाहवाही के शब्द कहने आता है। अपने बन्धु-बान्धवों से बतियाने आता है। कम्पलीट रिलीफ के लिये आता है। संक्षेप में, वह शब्द की चाह-और तलाश में आता है और शब्द ही उसे न मिले या मिले तो अधूरा, अस्पष्ट और अर्थहीन तो वह क्या लेके लौटेगा!

एक बात और कह दूं कि संगीत और नृत्य भले ही नाटक के अंग हों पर वे सब कुछ नहीं हैं, उनका स्थान प्रमुख नहीं है। हमें संगीत और नृत्य के हाथों नाटक की बागडोर थमाकर शब्द की हत्या नहीं करनी है। नाटक में प्रमुख बात है नाटकीय शब्द (अभिनय के साथ) जो मंच से बोला जाता है। शब्द जो स्थितियों को परत दर परत उघाड़ता है। और दर्शकों के मन में विलक्षण उमंग पैदा करता है-इस शब्द को हम बचा पायें तो भिन्न-भिन्न विवादों के बावजूद भी करियाला जीवित रह सकता है। □

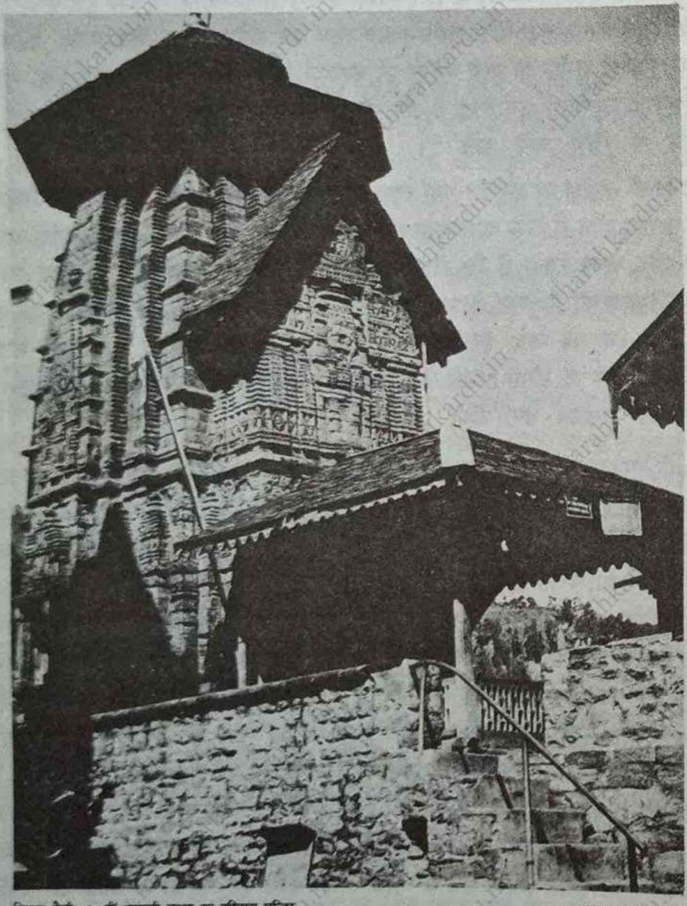

शिखर शैली, १०वीं शताब्दी, चम्बा का हरिराय मन्दिर — छाया : हाकम शर्मा

# काँगड़ा के जन्म संस्कार गीत और कृष्ण

मीनाक्षी शर्मा*

कांगड़ा जनपद के बारे में अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक तथा लौकिक आख्यान प्रचलित हैं। पद्मपुराण में उपलब्ध एक उपाख्यान के अनुसार "विष्णु ने अजयी दैत्य जालन्धर का रूप धारण कर उसकी धर्मपत्नी वृन्दा को काबू करना चाहा। उसके बाद शिव ने दैत्य का सिर काट दिया, किन्तु ब्रह्मा के वरदान के कारण उसका सिर पुनः धड़ से जुड़ जाता था। दैत्य का सिर व्यास की ओर, मुँह ज्वालामुखी तथा शेष भाग सतलुज़-व्यास के मध्य, पीठ जालन्धर और पाँव मुल्तान में दबे पड़े हैं। काँगड़ा के लिए जालन्धर, जालन्धरायण तथा जालन्धरपीठ शब्दों का व्यवहार होता है। इसको "त्रिगर्त" प्रदेश की संज्ञा भी दी गई है। जनश्रुतियों के आधार पर जालन्धर नाथ के कान पर गढ़ा होने के कारण इसे कानगढ़, काँगड़ा भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रमाण

संसार में लोक काव्य की सनातनता अति प्राचीन है। विवेच्य जनपद का लोक काव्य भी उतना ही पुराना है। इसके गीतिकाव्य में वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, लौकिक तथा वर्तमान समस्याओं से जुड़े विषयों को लेकर अनेक गीत प्रचलित हैं। इस सम्पत्ति को खोजने, संग्रह करने, सम्पादन और प्रकाशन की दिशा में जो प्रयत्न हुए हैं उससे भी इन गीतों की विषय विविधता सामने आती है।

हिन्दी भक्ति काव्य-धारा का प्रभाव समस्त जनपदीय लोकमानस पर रहा है। काँगड़ी लोकगीतों में पौराणिक पात्र राम और कृष्ण अनेक आयाम लेकर मुखर हुए हैं। इनसे जुड़े लोकगीतों का अध्ययन इस निष्कर्ष पर लाता है कि इनमें प्रचलित आख्यानों का रूपांतर ही नहीं हुआ है अपितु लोक ने अपनी धारणाओं में पौराणिक वृत्तों को उजागर किया है। श्रीकृष्ण के स्वरूप की व्यञ्जना से जुड़े ऐसे अनेक गीत हैं जिससे उनके अनेक स्वरूप प्रकट होते हैं। हिन्दी कृष्ण काव्य में प्रचलित कृष्णलीला सम्बन्धी चित्र मिलते हैं। काँगड़ी लोकगीतों का अध्ययन करने पर कृष्ण के विविध रूप उपलब्ध होते हैं। जन्म संस्कार पर गाए जाने वाले गीतों में कृष्ण कथा के प्रतिबिम्ब विद्यमान हैं।

**बाल रूप:**—काँगड़ी संस्कार गीतों में कृष्ण के बाल रूप की मनोहरता वर्णनातीत है। इनमें कृष्ण-जन्म से जुड़े आख्यान के अनेक प्रसंग मुखरित मिलते हैं। एक गर्भाधान लोकगीत "सूहड़ी" में देवकी को आठवें गर्भ के रक्षण की चिन्ता व्याकुल करती है। कृष्ण चरित में भी यह चिन्ता उसे इसी प्रकार ग्रसित करती है। लोकवाणी उसे यूं सुनाती है —

**उआरे ते उतरी भैण देवकी, ओ महाराज जी।**
**पारे ते उतरी यशोदां, रामयो राम जी।**
**तू कज़ो रौन्दी भैणे देवकिये, क्या तेरे मने क्रोध।**
**अठ जम्मे राजे कंसे मारे, नौमे लैणा अवतार।**

*राजमन्दिर नरेटी बरास्ता रैत, ज़िला कांगड़ा (हि.प्र.)

जे तेरे जन्मेगा पुतरनी भैणे देवकिये।
कन्या लेआं बदलाई। रामयो राम जी।
भाद्र महीने जन्म अष्टमी बुधवार जी।
कुछड़े पाया जिन्नी बसुदेवे,
जाणा ऐ जमना दे पार, रामयो राम जी।
जागदे प्रहरी सई गै, खुली गै धर्म द्वार जी।
अग्गे सः जमुना छालिया मारे, पिच्छे ते सिंह गरणाये,
चरणा बन्दी जमना थलैं गई ऐ, सिंहा जो होया वणवास,
उठ यशोदे सुतीये ओ महाराज जी,
बसुआ खड़ा दरबार जी, रामयो राम जी।[2]

अर्थात् एक ओर से बहन देवकी उतरी दूसरी ओर से बहन यशोदा। बहन देवकी तू क्यों रोती है? तेरे मन में क्या दुःख है? बहन मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया जिन्हें भाई कंस ने मार डाला, अब आठवें ने जन्म लेना है, उसी का दुःख है। बहन देवकी! यदि तेरे यहां पुत्र जन्मेगा तो तू मेरी कन्या के साथ बदल लेना। भादों मास की अष्टमी को कृष्ण ने अवतार लिया। वसुदेव ने गोद में श्रीकृष्ण को उठाकर यमुना के पार ले जाना है। जाग रहे प्रहरी सो गये, धर्म के द्वार खुल गये। आगे यमुना लहरें मार रही थी पीछे सिंह गरज रहे थे। यमुना नदी श्रीकृष्ण के चरण छूकर उतर गई और सिंह वनों में चले गये। सोई हुई यशोदा! उठो, दरबार में वसुदेव महाराज खड़े हैं। ये भाव सूरदास की इस रचना में यूं व्यंजित हुए हैं —

**गोकुल प्रगट भए हरि आई।**
**अमर-उधारन, असुर-संहारन, अंतरजामी त्रिभुवनराई।**
**माथैं धरि वसुदेव जो ल्याए, नंद महर घर गए पहुंचाई।**
**जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाई।**
**गदगद कंठ बोल नहिं आवै, हरसंवत है नन्द बुलाई**
**आवहुकंत, देव परसन भए, पुत्र भयौ मुख देखौ धाई।**
**दौरि नंद गए, सुत मुख देख्यौ, सो सुख मोपै बरनि न जाई।**
**सूरदास पहिलैं ही मांग्यौ, दूध-पियावन जसुमति भाई।।**[3]

उपरोक्त गीत में कृष्ण जन्म का पूरा दृश्य साकार हो उठता है। यह प्रसंग कृष्ण-कथा के सामानान्तर है। जब वसुदेव कृष्ण को यशोदा के पास छोड़कर बदले में लड़की को लेकर आते हैं तो सोते प्रहरी जाग पड़ते हैं, धर्म के द्वार चढ़ जाते हैं और राजा कंस को सूचना दी जाती है कि देवकी ने पुत्री को जन्म दिया है। कंस ने झूसर धोबी से कन्या को वज्र शिला पर पछाड़ने के लिए कहा, परन्तु वह माया रूपी कन्या हाथ से छूट गई। छूटते ही वह आकाश में बिजली की तरह चमक कर बोली —हे पापी कंस! तू किसे मार रहा है? तुझे मारने वाला तो यमुना के उस पार पहुंच चुका है। इसी प्रकार एक अन्य गीत लीजिए। इसमें गोकुल में कृष्ण जन्म पर खुशियाँ मनाने की व्यञ्जना है। हर्षोल्लास का अव्यक्त वर्णन इस प्रकार मिलता है —

घर वसुदेवे दे जमेया पुत्र,
जशोदा पलंग चढ़ी।
नन्द करदा ये गौआं दे दान।
सोयने दे सिंग मढ़ी।
भट्ट ब्राह्मण दिन्दे न सीसां,
जीये स्हाड़ा कृष्ण हरि।
औन सां औन बृज दीयां नारां,
सोलहसिंगार करी। 4

वसुदेव के घर में पुत्र ने जन्म लिया है, यशोदा पलंग पर बैठी है। नन्द प्रसन्नता से गौओं का दान कर रहे हैं, जिनके सींग सोने से मढ़े हैं। भाट तथा ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे हैं कि हमारा श्रीकृष्ण युग-युग जीये। बृज की नारियाँ सोलह श्रृंगार करके आ रही हैं, गोकुल का बच्चा-बच्चा कृष्ण जन्म पर खुशियाँ मनाता हुआ उनकी दीर्घायु की कामना कर रहा है। सूरदास भी इसी प्रकार कहते हैं —

आज हो बधाई बाजे, मन्दिर महर के।
फूलें-फिरें गोपी-ग्वाल, ठहर-ठहर के।। 5

कृष्ण के बाल-रूप की झाँकी इस गीत में इस प्रकार से है —

जी सच दस्सिये, बालक बसुए दा जाया जी,
हत्थड़ूआं फेरी-फेरी नचदा जी,
पैरड़ूआं फेरी-फेरी चलदा जी,
जां जमेया जां दीपक बलेया,
ठुल-पुल दई करी नचदा जी,
जी सच दस्सिये, बालक बसुए दा जाया जी। 6

सच बताऊँ, यह बालक वसुदेव का ही है।यह हाथ चला-चला कर नाचता है, पैर फेर-फेर कर चलता है. जब इसने जन्म लिया तो प्रसन्नता सूचक दीपक जलाए गए जिसके प्रकाश में यह आश्चर्यभरी मुद्रा में देखते, थिरकन देते नाचते हैं। यशोदा तो कृष्ण की छोटी-छोटी अंगुलियों को देखकर न्यौछावर हुई जाती हैं। सूरदास जी कहते हैं —

छोटी-छोटी गोड़ियाँ अंगुरियां छबीली छोटी
नखज्योति मानों कमलदलों पर। 7

इसी प्रकार "शोभित कर नवनीत लिए" और "किलकत कान्ह घुटुखिन आवत" आदि में सूर कृष्ण के सौन्दर्य को चार चाँद लगाने के साथ-साथ बालवर्णन में स्वाभाविकता का पुट दे देते हैं। लोरियों में भी कृष्ण को पालने में झुलाने की व्यंजना कितनी सटीक हुई है—

जिस दिन बालें जन्म लेआ,
पई नगारें चोट।

**बाला लोरी लै।।**
**तेरीआ माईया दें मने हुब,**
**तेरे दावे दें सरे दूब।**
**कि बाला लोरी लै।।**[8]

जिस दिन बालक ने जन्म लिया तो नगारे पर चोट पड़ी। बालक! लोरी लो। तेरी माता के मन में अति प्रसन्नता है, तेरे पिता के सिर पर बधाई सूचक दूर्वा है, हे बालक, लोरी लो। इन्हीं भावों को सूरदास ने यूं कहा है —

जसौदा हरि पालनै झुलावैं।
हलरावै, दुलराई, मल्हावै-जोइं-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहूं हरि पलक मूंद लेत हैं, कबहूं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन है कै रहि, करि-करि सैन बतावै।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावैं।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नन्द भामिनी पावै।।[9]

कृष्ण के ऊपर जब माखन चोरी का आरोप लगाया जाता है तो वह माँ से कहते हैं —

यशोदा माए मैं नी ओ दुध खाया,
बिलुएँ ढोहली गुआया,
हत्थड़ू वी बन्हें भाईया, पलड़ू वी बन्हें,
छमकणिया छमकाया, मैं नही ओ दुध खाया।।[10]

माँ! मेरे छोटे-छोटे हाथ तथा पैर हैं। छींके तक कैसे पहुँच सकता हूँ? हे माँ! मैंने दूध नहीं खाया है। तू मेरी काली कमरी दे। आखिर एक दिन पराया पुत्र कहकर निकाल दिया जाऊंगा। इस गीत में सूरदास के काव्य-अनुरूप शैली-गत प्रभावस्पष्ट दिखाई देते हैं। सूरदास के बाल लीला वर्णन में कृष्ण की चेष्टाएं' और बहाने हास्यप्रद हैं। निम्न पद में भी हास्य रस प्राप्त होता है —

**मैया मैं नहिं माखन खायो।**
**ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो।**
**देखि तुहि सीके पर भाजन, ऊँचै धरि लटकायो।**
**हों जु कहत नन्हें कर अपने, मैं कैसे करि पायो।**
**मुख दधि पौंछि बुद्धि इक कीन्ही, दौना पीठि दुरायौ।**
**डारि साँटि मुसकाई जसौदा, स्यामहिं कंठ लगायो।।**[11]

एक बार यशोदा कृष्ण के मचलने पर उसे चाँद दिखाती हैं तो चाँद को देखकर वह उसी को लेने की जिद्द करते हैं —

**चन्द्र खिलौणा दे मेरी माता जी।**
**चन्द्र खिलौणा लैणा ऐ।**
**चन्द्र खिलौणे दा चा मेरी अम्मा जी,**
**चन्द्र खिलौणा लैणा ऐ।**[12]

हे माँ! मुझे चन्द्र खिलौना दो। मैंने चन्द्र खिलौना लेना है। मुझे चन्द्र खिलौना लेने का बड़ा ही चाव है। सूर के कृष्ण भी इसी प्रकार माँ यशोदा से चन्द्र खिलौने की माँग करते हैं —

**मैया मैं तो चन्द्र खिलौणा लैहों।**[13]

कृष्ण माँ से छिञ्ज़ो को देखने का हठ करते हैं —

**गोकुल माये छिञ्ज़ां पईयां,**
**मैं वी छिञ्ज़ां जो जाणा।**
**छिज़ां नी जाणा पुतरा,**
**तित तेरियां बेरिया औणा।**[14]

हे माँ! गोकुल में छिञ्ज़ें हो रही हैं, मैं भी देखने जाऊंगा। हे पुत्र! तू वहाँ मत जाना! वहाँ तेरे शत्रुओं ने आना है। यशोदा कृष्ण को समझाती हैं कि अपने घर में ही खेलना, कहीं दूर मत जाना। यशोदा को हर समय शत्रुओं का भय लगा रहता है।

**सुण बालमुकुन्दा! दूर खेलण मत जाई,**
**खेलणे जो अंगण बहतेरा,**
**सुण बालमुकुन्दा दूर खेलण मत जाई।**[15]

हे बालमुकुन्द, सुनो! दूर खेलने मत जाना क्योंकि तुम्हारे खेलने के लिए आंगन बहुत बड़ा है। माँ का हृदय बड़ा ही कोमल होता है। घर से निकलते ही उसके बच्चे पर न जाने क्या आपत्ति आ जाये? छोटा सा बालक खेलने के लिए दूर चला जाए तो न जाने कहाँ बहक जाये? माँ अपने बालक को आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहती। कृष्ण के हठ करने पर माँ उसे 'हाऊ' का भय दिखाती है। सूरदास के काव्य में इसका वर्णन यूं है —

**खेलन दूर जात कत कान्हा।**
**आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम कहिं जानत नान्हा।**
**इक लरिका अबहिं भजि आयौ, रोवत देख्यौ तांहि।**
**कान तोरि वह लेत सबन के, लरिका जानत नांहि।**[16]

कृष्ण,काले हैं, बलराम,गोरे हैं इसी बात को लेकर गोपियाँ कृष्ण को चिढ़ाती हैं —

**भादों महीने देआ जरमेया, वसुदेवे देआ नन्दा वे,**
**तेरी भैणा गोरी, तेरी माँ गोरी, वीरा तूं कियां सांवले रंग वे।**[17]

भादों मास को जन्म लेने वाले वसुदेव के पुत्र! तेरी बहन भी गोरी है, माँ भी गोरी है। हे कृष्ण! तुम्हारा रंग कैसे काला है? बलराम भी कृष्ण को इसी बात को लेकर चिढ़ाते हैं। सूरदास ने इसकी बड़ी सुन्दर व्यञ्जना की है —

**मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।**
**मोसो कहत मोल को लीन्हो,**
**तू जसुमति कब जायो।**
**नन्द बिगोरे जसोदा बि गोरी,**
**तू कत स्यामल जायो।**
**चुटकी दै-दैं ग्वाल नचावत,**
**हँसत सबै मुसकात।** [18]

इस प्रकार काँगड़ी लोकगीतों के संस्कार गीतों में जो विशेषकर जन्म गीतों सम्बन्धी हैं, यह विवेचना इस निष्कर्ष पर लाती है कि इन गीतों के रचियताओं के मानस पर मध्यकालीन कृष्ण-काव्य परम्परा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इस प्रकार गीतों के अनेक और भी रूप हैं जिनमें सूरदास के काव्य का प्रभाव या प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। इसमें यह सही है कि इन लोकगीतों में सूरदास के काव्य का अनुवाद नहीं है बल्कि सूर के काव्य का विषय जो कृष्ण के बाल लीला चरित से सम्बन्धित है, को यहाँ के लोककवि ने अपने ही ढंग से कहने का प्रयास किया है। इनमें प्रयुक्त शब्द प्रयोग, शब्द, गुण एवं शक्तियाँ गीत के मूल भाव को उजागर करते हैं। इस प्रकार कृष्ण-लीलाविषयक कृष्ण रूप साकार हो उठता है। इसका सीधा प्रभाव हमारे मन तथा मस्तिष्क पर पड़ता है जिससे गायक और श्रोता साधारणीकृत उन्हीं भावों में मस्त हो जाते हैं। यही इन गीतों की मूल संवेदना है जो आज के वैज्ञानिक युग में लोकमानस को भावविभोर करती अपनी ओर आकर्षित करती है।

---

**संदर्भ पुस्तकें**

1. डॉ० एम. एस. रंधावा, काँगड़ा के लोकगीत, वर्ष 1955
2. डॉ० गौतम व्यथित, काँगड़ी लोकगीत-भाग एक, वर्ष 1973, पृ. 2
3. डॉ० हरवंशलाल शर्मा, सूर सरोवर, वर्ष 1960, पृ. 128
4. डॉ० गौतम व्यथित, काँगड़ी लोकगीत-भाग एक, वर्ष 1973, पृ. 16
5. डॉ० हरवंशलाल शर्मा, सूर सरोवर, वर्ष 1960, पृ. 62
6. डॉ० गौतम व्यथित, काँगड़ी लोकगीत-भाग एक, वर्ष 1973, पृ. 11
7. डॉ० शशि तिवारी, सूर के कृष्ण: एक अनुशीलन वर्ष 1961, पृ. 7.
8. डॉ० गौतम व्यथित, काँगड़ी लोकगीत-भाग एक, वर्ष 1973, पृ. 7.
9. डॉ० हरवंशलाल शर्मा, सूर सरोवर, वर्ष 1960, पृ. 128
10. डॉ० गौतम व्यथित, काँगड़ी लोकगीत-भाग एक, वर्ष 1960, पृ. 22
11. डॉ० हरवंशलाल शर्मा, सूर सरोवर, वर्ष 1960, पृ. 117

12. डॉ० गौतम व्यथित, काँगड़ी लोकगीत-भाग एक, वर्ष 1973, पृ. 25
13. डॉ० शशि तिवारी, सूर के कृष्ण : एक अनुशीलन, वर्ष 1961, पृ. 47
14. डॉ० गौतम व्यथित, काँगड़ी लोकगीत-भाग एक, वर्ष 1973,
15. वही, पृ. 16
16. डॉ० हरवंशलाल शर्मा, सूर-सरोवर, वर्ष 1960, पृ. 99
17. डॉ० गौतम व्यथित, काँगड़ी लोकगीत-भाग एक वर्ष 1973, पृ. 9
18. डॉ० हरवंशलाल शर्मा, सूर-सरोवर, वर्ष 1960, पृ. 102

फोटो साभार : जिला भाषा अधिकारी, धर्मशाला

कांगडी लोकनृत्य झमाकड़ा की एक कलाकार

# वेद और वनसम्पदा

डॉ० कर्म सिंह*

न केवल मनुष्य समाज अपितु समस्त प्राणियों का जीवन वनों पर आश्रित है। वैदिक संस्कृति इन्हीं वनों में पनपी। समग्र आरण्यक साहित्य का सृजन वनों में ही हुआ। प्राणिमात्र को जीवनदान देने वाली भूमि का संरक्षण केवलमात्र वनों के द्वारा ही संभव है। ये वन सहस्त्रों मुमुक्षुओं की साधना स्थली के प्रतीक हैं। मनुष्य की जीवन लीला के तो ये वन प्राण हैं। वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। वेदों में भी वन-सम्पदा का महत्त्व वर्णित है। प्राणिमात्र के जीवन की रक्षा के लिए वृक्ष, बाग, बगीचे, उद्यान, वन, और पृथिवी के लिए वायु के लिए, जल की आपूर्ति के लिए, वृष्टि के लिए, आरोग्यता के लिए, कृषि के लिए, नाना प्रकार के उद्योग धन्धों के लिए पशु-पक्षियों के लिए, औषधि वनस्पति आदि के लिए 'वन' नितान्त आवश्यक है। इसी वैदिक संस्कृति से अनुप्राणित होकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने वनवास के समय वृक्षों का आरोपण किया। यह विद्या उन्होंने भी परशुराम से सीखी। भगवती सीता ने भी पेड़ पौधों की भरपूर सेवा की। महाभारत काल में भी अनेकों ऋषियों-मुनियों ने जंगलों में साधना करते हुए वनों की रक्षा की। महर्षि कण्व की पुत्री शकुन्तला का पेड़-पौधों, लताओं के साथ निश्छल प्रेम वनों की रक्षा के लिए की गई सेवा का प्रत्यक्ष उदाहरण है। शकुन्तला के विरह में लताओं का क्रन्दन और वृक्षों द्वारा पुष्प वर्षा किए जाने का मार्मिक वर्णन सहज ही सहृदय व्यक्ति में वनों के प्रति असीम आत्मीयता के भावों को संचारित कर देता है।

वैदिक सभ्यता में वनों का प्रचुर महत्व रहा है। मनुष्य जीवन की ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चारों अवस्थाओं में वनों का महत्व निर्विवाद है। ब्रह्मचर्याश्रम में अध्ययन के लिए गुरुकुल व आश्रम वनों में हुआ करते थे। गृहस्थ के कृषि, व्यवसाय, उद्योग, आवासादि समस्त कार्य वनों के बिना सम्पन्न नहीं होते। वानप्रस्थाश्रम तो वन साधना के लिए प्रस्थान करने का ही नाम है। सन्यास में भी पार्वत्य कन्दराओं में ही साधक साधनारत करते हैं।

परोपकारपरायण सन्यासीवर्ग जो लोकोपदेश के कार्य का निर्वाह करता हुआ योगसाधना में रत रहता है वह भी जंगलों का ही आश्रय ग्रहण करता है। इस प्रकार मनुष्य का जीवन आदि से अन्त तक वनों पर आश्रित है। सृष्टि की उत्पत्ति में इस पृथिवी और द्युलोक को बनाने में भी एक महान् वन एवं वृक्ष की आवश्यकता का प्रतिपादन निम्नांकित वेद मन्त्र में किया गया है।

**किंस्विद्वनं क उ स वृक्षडआस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।**
**मनीषिणों मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानिधारयन्।।**

(यजुर्वेद १७-२०)

अर्थात् वह कौन सा वन और कौन सा वृक्ष था कि जिससे द्युलोक पृथिवी लोक को विश्वकर्मा जगदीश्वर ने

*दीप कुञ्ज, कुसुमपटी, शिमला-१७१००९ (हि.प्र.)

बनाया अर्थात् सृष्टि रचना से पूर्व की अवस्था जो अविकसित दशा थी इस सृष्टि की वन-अवस्था थी। उसी वन-अवस्था के वृक्षों की उस विश्वकर्मा ने अपने कौशल से कलमें की तथा उसको व्यवस्थानुसार करके इस सृष्टि की सुन्दर रचना की। इस मन्त्र में आलंकारिक रूप से यह प्रश्न किया गया है कि हे मननशील विद्वान् पुरुषो! यह प्रश्न पूछो कि समस्त भुवनों को धारण करता हुआ वह विश्वकर्मा किसके ऊपर स्थित था। इसके उत्तर में इसी मन्त्र में कहा गया है—सृष्टि रचना से पूर्व की अविकसित प्रकृति अवस्था ही वन एवं वृक्ष है जिससे यह सब पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, लोकलोकान्तर की रचना को विश्वकर्मा परमात्मा ने अपने तप से,ईक्षण से एवं सामर्थ्य से सम्पन्न करता है। इसी प्रकार वेद में संसार को वृक्ष की उपमा देकर जीव के लिए 'निम्न प्रकार से उपयोगी बताया है :—

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः
सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवी
मदृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज।।
(यजुर्वेद २८-२०)

अर्थात् सुनहरे पत्तों वाला मधुर शाखाओं वाला और अच्छे फल वाला, दिव्य संसार वृक्ष, दिव्यगुणों द्वारा दिव्य जीव को बढ़ाता है। प्रथम तेज से द्युलोक को स्पर्श करता है तथा मध्य भाग से अन्तरिक्ष को स्पर्श करता है एवं पृथिवी को दृढ़ करता है। यह संसार वृक्ष ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त ऐश्वर्य साधक पदार्थ को प्राप्त हो, अत: यजन कर।

इस संसार में रहकर जीव संसार का उपयोग करता है। इसके फलों को खाता है, अत: मनुष्य का कर्तव्य है कि वह संसार में रहता हुआ यजन किया करे जिससे संसार सुनहरे पत्रों, व मधुर शाखाओं वाला और सुन्दर फल वाला बना रहे और सभी उसके मधुर फलों को प्राप्त कर आनन्दित रहें।

वैदिक शास्त्रों में 'स्वर्गकामो यजेत्' आदि उपदेशों के माध्यम से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ का अनुष्ठान करने हेतु प्रेरणा प्रदान की गई है। यज्ञ,समिधा, औषद्धि और वनस्पति एवं अन्न के बिना सम्पूर्ण नहीं हो सकता अत: यज्ञ-हवन के लिए पेड़-पौधे की भी अत्यन्त अनिवार्यता है। यज्ञ में प्रयुक्त गोघृत,दुग्ध आदि गाय से प्राप्त होते हैं और गाय का जीवन पेड़-पौधों पर टिका हुआ है। वेद में अनेकत्र वन के महत्व का दिग्दर्शन कराते हुए उनकी वृद्धि एवं सुरक्षा की प्रेरणा वनविभाग को निम्नलिखित सन्दर्भों में इस प्रकार से की गई है :—

**वृक्षाणां पतये नमः** — वृक्षों का संरक्षण एवं उत्पत्ति करने वालों को नमस्कार हो।

**औषधीनां पतयेनमः** — पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों के क्या-क्या गुण हैं। इस विद्या को जानकर महत्त्वानुकूल तथा आवश्यकतानुकूल उत्पन्न करने वाले तथा रक्षण कार्य में कुशल जनों के लिए हमारा सत्कार हो। (यजुर्वेद १६-१९)

**वनानां पतये नमः** — वनों के स्वामियों के लिए नमस्कार हो। (यजुर्वेद १६-१८)

**अरण्यानां पतये नमः** — अरण्यों के अध्यक्ष के लिए नमस्कार हो। (यजुर्वेद १६-२०)

औषधियों और वनस्पतियों से सभी की शान्ति की प्रार्थना करते हुए कहा गया है :—

**औषधे त्रायस्व** — हे औषधि! हमारी रक्षा करो। (यजु० ४-१)

**औषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः** — औषधियां और वनस्पतियां हमारे लिए शान्तिकारक हों।

**माध्वीर्नः सन्त्वोपधीः** — हमारे लिए औषधियां मधुररस वाली हों। (यजु. १३-२७)

यज्ञ, हवन के द्वारा औषधियों, वनस्पतियों व पेड़-पौधों को बढ़ाने के लिए प्रेरणा दी गई है।

**वनस्पतयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम** — मेरी वनस्पतियां यज्ञ के द्वारा समर्थ हों।

**आरण्याश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्** — मेरे अरण्य, जंगल, वनादि यज्ञ के द्वारा समर्थ हों।

**औषधीभ्यः स्वाहा** — औषधियों के लिए यज्ञ द्वारा उत्तम क्रिया हो। (यजु. २२-२८)

**फलेभ्यः स्वाहा** — फलों के लिए यज्ञ के द्वारा उत्तम क्रिया हो। यजु. २२-२८)

वेद के कुछ मंत्रों में स्पष्टतया ये निर्देश किए गए हैं कि औषधियों को नष्ट मत करो:-

**मौषधीर्हिंसीः** — औषधियों को नष्ट मत करो। (यजु. ४-१)

**नमो वृक्षेभ्यः** — वृक्षों के लिए हमारा आदरभाव हो, हम उनको सुरक्षित रखने की तथा बढ़ाने की विद्या को जानें। (यजु. १६-१७)

इस प्रकार वनों से औषधि, फल, मूल,पुष्प, शाखा, पत्ते, गोंद, छाल, बीज, खाद, आरण्य एवं ग्राम्य पशु-पक्षी आदि की प्राप्ति होती है उससे मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। और उन पदार्थों की उपयोगिता जान कर उद्योग धन्धे, व्यापार, व्यवसाय कर अपनी उन्नति करनी चाहिए।

इस प्रकार वेद में वृक्ष, वनस्पति, औषधि को समृद्ध करने की प्रेरणा दी गई है। इनके पालक, रक्षक, व संवर्धन करने वाले व्यक्ति की दीर्घायु की कामना की गई है व उनके प्रति आदरभाव व्यक्त किया गया है। वेद ने याज्ञिक कर्म-काण्ड के साथ वृक्षों को जोड़कर यह आदिष्ट किया है कि यज्ञ-हवन के द्वारा वृक्षों, वनस्पतियों एवं औषधियों को बढ़ाया जाए। अत: यही अभीष्ट है कि इन वनों से औषधि, फल, मूल, पुष्प, पत्ते, गोंद, छाल, बीज, इत्यादि की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न करने चाहिएं और उन पदार्थों की उपयोगिता जान कर उद्योग-धन्धे, व्यापार, व्यवसाय, कर अपनी उन्नति करनी चाहिए।

वेद में अनेक ऐसी औषधियों का उल्लेख है जो यक्ष्मानाशक, श्लेष्मनाशक, ज्वरनाशक, केशवर्धक, कुष्ठनाशक, व वाजीकरण आदि के रूप में प्रयोग के लिए निर्दिष्ट की गई हैं। जैसे :—

| | | |
|---|---|---|
| कुष्ठ | अथर्ववेद | ५-४-१ |
| केशवर्द्धिनी | ,, | ६-२१-३ |
| सहस्रवर्णी | ,, | ८-७-१३ |
| बलासनाशिनी | ,, | ८-७-१० |
| सोमराज्ञी | ,, | ६-९६-१ |
| अप्सरा | ,, | ४-३८-१ |

| | | |
|---|---|---|
| आंजन | " | १९-४४-१ |
| खदिर | " | ३-६-१ |
| कुवल | " | ३-६-२ |
| दूर्वा | " | १३-२० |

इस प्रकार चारों वेदों में मुख्यतया अथर्ववेद में औषधिविज्ञान का विस्तृत वर्णन है।

आदि काल से ही व्यक्ति एवं समाज का जीवन का वनों के आश्रित बहुत कुछ है। वर्तमान समय में मनुष्य वनों को निर्दयतापूर्वक काट रहा है और उसके दुष्परिणाम भी भुगत रहा है। परन्तु सभ्य बनने की धुन में, फैशन एवं बिलासितापूर्ण जीवननिर्वाह करने के कारण वह वनों से दूर हटता जा रहा है और वनों पर प्रहार कर रहा है। वन जीवन की एवं राष्ट्र की महान् सम्पदा हैं। आज वनों की कमी के कारण वर्षा की कमी हो रही है। वनों से भूमि के ऊपर की मिट्टी के स्तरों की रक्षा होती है जिससे भूमि कृषि-योग्य बनती है। परन्तु वनों के काटने से वृष्टि एवं भूमि की हानि होने से अन्नोत्पादन की कमी हो रही है। वनों की कमी के कारण पर्यावरण का सन्तुलन दिन-प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है और प्रदूषण की समस्या भयंकर होती जा रही है। वृक्ष लगाने के लिए सरकारी तौर पर व कुछ संस्थाओं द्वारा प्रयत्न किए जा रहे हैं परन्तु वृक्षारोपण मात्र सरकार का ही काम नहीं है जनसाधारण को यह पुनीत कार्य करके प्रदूषण से बचने के उपायों को सफल बनाने में अपना योगदान देना चाहिए। □

किब्बर गांव—लाहुल स्पिति

# झेड़ा

सरोज ठाकुर*

जिस प्रकार सिरमौर, शिमला और सोलन ज़िलों में हारें और पवाड़े प्रसिद्ध गीति नाट्य हैं उसी प्रकार बिलासपुर, हमीरपुर और कांगड़ा क्षेत्रों में झेड़े लोकानुरंजन के विशिष्ट साधन हैं। झेड़ा का अर्थ झगड़ा है, परन्तु मूल रूप में झेड़ा से अभिप्राय: वीरगाथा से है जिसे डमरू और थाली की संगीत मेंदर्शाया जाता है। प्रदर्शन की दृष्टि से हारों और झेड़ों में अत्यन्त साम्यता है। झेड़े यों तो वर्ष भर कभी भी गाए और दर्शाए जाते हैं, परन्तु रक्षा-बन्धन के आस-पास के दिन इनके प्रमुख अवसर होते हैं। तब झेड़ा-मण्डलियां डमरू और कांसे की थाली बजाते हुए घर से निकलते हैं और स्थान-स्थान पर झेड़े प्रस्तुत करते हैं। जिस गांव में मण्डली वाले पहुंच जाते हैं, वहां के लोग कन्धों पर कम्बल डाल और हाथों में तम्बाकू-नरेल ले कर उस स्थान पर पहुंच जाते हैं। लोग खेतों के काम से कुछ मुक्त हुए होते हैं। अत: यह मनोरंजन का उचित समय होता है। झेड़े इतना आनन्द प्रदान करते हैं कि लोग मण्डलियों की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। ये सभी झेड़े स्थानीय बोली में पद्य रूप में प्रदर्शित किए जाते हैं। यहां कुछेक प्रसिद्ध झेड़ों का उल्लेख किया जाता है।

राजा जगता  झेड़े के अनुसार जगता नूरपुर में कर्म चन्द का पुत्र तथा तारा चन्द का पोता पठानियां वंश का प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रसिद्धि और लोक-प्रियता को सुनकर दिल्ली के बली बादशाह को परेशानी हुई। उसने राजा को दिल्ली बुलाया —

**लिखे परवाने बली बाछाएं, देने राजा जगते तांई।**
**इन्हा लिखियां राजा बाचदा, क्या घलिया फरमाई।**
**जे तू कहाए पहाड़ा रा राजा, तां मिलेयां बराबर आई।**

राजे ने अपनी सेना इक्ट्ठी की और दिल्ली पहुंचा। उसकी सेना देखकर दिल्ली के बादशाह ने उससे लड़ाई करना उचित न समझा। उसने अपने वज़ीरों से विचार-विमर्श करने के बाद कूटनीति से राजा जगता का स्वागत किया। उसका खूब अतिथि-सत्कार किया। उसे धर्म भाई बनाया और उसे प्रसन्न करने के लिए अढ़ाई घड़ी दिल्ली शहर में लूट करने की आज्ञा दी:-

**ढाई घड़ी घना जो लेयां, दिल्ली तेरे हवाले करदा।**
**राजे स्यूना,चांदी कुल मुकाया, होर कोई नी तंगी करदा।**

राजे ने केवल सोना, चांदी लूटा और किसी को तंग न किया। जाते हुए मुगल बादशाह ने राजा जगता को काबुल में बाई-टिक्कों (बाईस गांवों) पर आक्रमण करने की सलाह दी।

राजा जगत सिंह ने काबुल पर आक्रमण किया और बाईस टिक्कों को तहस-नहस कर दिया।

*सहजराम भवन, मकान संख्या २६, शिमला-१७११०२ (हि.प्र.)

परन्तु वापिस होने से पूर्व काबुल में भारी बर्फ पड़ी और झेड़े के अनुसार राजा और उसकी सेना बर्फ में नष्ट हो गए।

**गढ़ मलौण** गढ़ मलौण झेड़े में हण्डूर के राजा भूप सिंह और कहलूर के राजा गम्भीर चंद के बीच युद्ध का वर्णन है। बिलासपुर से लगभग चालीस किलोमीटर दूर स्वारघाट के निकट पुरानी रियासत कहलूर तथा हण्डूर की सीमा पर मलौण नाम का शिखर है। एक बार हण्डूर के राजाने इस ऊंचे टीले पर गढ़ तैयार किया। यह देखकर कहलूर के राजा और रानी को भय हुआ। जब राजा शांत बैठा था तो रानी नें ताना दिया, जिस पर राजा को क्रोध आया—

**एढे बोल न बोल राणीए, ए खरे नी लगदे।**
**बोल रेही जांदे पर सिर जांदे, मुड़ी- मुड़ी ने सिर धड़े नी लगदे।**

वीरों के सिर धड़ से अलग हो जाते हैं। सिर नहीं रहते, शब्द, बोल रह जाते हैं। राजे ने सेना इक्ट्ठी की और पम्मा वजीर के नेतृत्व में उसे गढ़ मलौण पर आक्रमण करने के लिए भेजा:-

**राजा बोले देख पम्मेया, वजीर तू दित्ता बनाई।**
**हण्डूरा रे सारे बन्ने पर चिणे, गढ़ से देखणे तू सारे जाई।**

कहलूर की सेना पहले दिन मदोलड़ पहुंची और दूसरे दिन हण्डूर पर आक्रमण कर दिया। हण्डूर का राजा इसके लिए तैयार नहीं था। अत: रानी ने चाल खेली और अपने आदमी भेज कर हार मान ली और पम्मी को धर्म भाई बनाने का वचन दिया। पम्मी सेना को पीछे छोड़ कर रानी से मिलने गया, परन्तु ज्योंही वह राज-दरबार पहुंचा उसे घेर लिया गया। हण्डूर के वज़ीर हिम्मत चन्द ने जब पम्मी को कहा:-

**हिम्मत चन्द मियां बोली मारदा, पम्मेया कुण जेहा गढ़ ढलाणा।**
**इक गढ़ जौंडू, दुआ बधोलू तिजा मलौणा।**

इस तरह पम्मी वज़ीर धोखे में मारा गया। परन्तु कहलूर की सेना ने साहस न छोड़ा। राजा को बिना सूचना दिए पम्मी के भाई बीरपा को बुला कर उसे सेनापति बनाया और हण्डूर पर फिर आक्रमण किया और हण्डूर को नष्ट कर दिया।

**ओ जी कांसीया रा लैक बेटड़ा**
**खिंजी-खिंजी ने बरछियां मारे।**
**लड़ी-लड़ी ने सारे हण्डूरीए मारे।**
**ए सुनी ने बिलासपुरा बजे नगारे।**

**गढ़ छिंझयार** जब कांगड़ा में राजा संसार चंद राज्य करता था उस समय कहलूर में महाचन्द राजा था। संसार चन्द नें अपने फैलाव की नीति में गढ़ छिंझयार पर कब्जा किया। यह गढ़ कहलूर रियासत में वर्तमान बिलासपुर ज़िले की घुमारवीं तहसील के उत्तर पश्चिम मेंदघोल की दिशा में दस-बारह किलोमीटर दूर है। महाचंद अकेला इस गढ़ को वापिस नहीं ले सकता था। उसने विशेष

राजदूत भेजकर चम्बा के राजा से सहायता मांगी। उसने सहायता का वचन दिया परन्तु मण्डी के राजे को आमंत्रित करने का संकेत दिया। मण्डी के राजे ने भी सहायता का वचन दिया परन्तु साथ में जुब्बलके राजे को साथ मिलने की सलाह दी।

राजा ने सिरमौर के राजा से भी सहायता लेनी चाही। सिरमौर की रानी, उस समय के राजे की मां, कांगड़े के राजा की बहिन थी। कोई वहां जाने के लिए तैयार न था। राजा ने रामू नामी जासूस को यह काम सौंपा —

**रामूए भगवें कीते कपड़े बगड़े री बड़ठी कासी।**
**तिसारा बणाया मुकट, वंरागी बणेया वणवासी।**
**झोली तुंबा पाया रामूए, बरागी बणी अलख जगांदा।**
**कचहरी आई ने अलख जगाई, किसी ते नी पछानिया जांदा।**

रामू सिरमौर के राजा के पास पहुंचा। राजा ने युद्ध की तैयारियां कीं। रानी ने रोका। मतेई ने कहा —

**छजे बैटी राजे री मतेयी, सः बोले जितने-क तेरे सिपाही।**
**तितने-क घोड़े बापूए के, घाह जो जांदे रोज भ्यागाही।**

यह सुन कर राजा को बड़ा क्रोध आया। वह सेना लेकर बिलासपुर पहुंचा। महाचंद ने उसका स्वागत किया, और अपने सेनापति अगल दत्त को साथ भेज कर छंझयार की ओर प्रस्थान कराया। जब सेना दकड़िया स्थान पर पहुंची तो संसार चन्द को सूचना मिल गई। संसार चन्द की सेना ने उसी तोप से आक्रमण किया जो कहलूर के राजे की थी परन्तु झंजयार में रह गई थी। सिरमौर के राजे पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। सिरमौरी सेना ने जब तोप चलायी तो छंझयार की दीवारें नष्ट हो गईं। संसार चन्द की सेना नष्ट हुई। जो बचे,वे भाग निकले।

रात के समय राजा संसार चंद ने अपने गुप्तचर भेजे और अगल दत्त को महल मोरिया (वर्तमान तप्पा महलता, बमसन तथा लुगालती) का क्षेत्र देना स्वीकार किया यदि वह सिरमौरी राजा को मारने में सहायता करेगा। अगल दत्ता लालच में आ गया। उसने गोला बारूद समाप्त होने का बहाना करके खाली बंदूकें चलाई —

**सिक्का दारू मुकेया किले बिच, हुकम करदा अगल दत्ता।**
**फे फोकियां बंदूकां चलाण लई, कहलूरी फोज जो हुकम दित्ता।**

अगल दत्त की गद्दारी के कारण कहलूर और सिरमौर की सेना को पराजय हुई जिसमें सिरमौर का राजा भी मारा गया। □

# मुखौटा निर्माण कार्यशाला – एक महत्वपूर्ण आयोजन

पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर (राजस्थान) तथा हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 25 अगस्त से 8 सितम्बर, 1989 तक शिमला में पन्द्रह दिवसीय 'पारम्परिक मुखौटा निर्माण कार्यशाला' का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला का उद्घाटन 25 अगस्त को वाई. डब्ल्यू. सी. ए. हाल शिमला में हुआ।

अकादमी के सचिव डॉ. बंशीराम शर्मा ने अतिथियों का स्वागत करते हुए बतलाया कि इस कार्यशाला का आयोजन पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र की निदेशक श्रीमती अदिति मेहता के साथ शिमला में मास जून में हुई एक बैठक के कारण सम्भव हो सका। उन्होंने कहा कि प्रदेश में लगभग सौ मुखौटा कलाकार अपने ग्राम में इस कला-विधा में कार्य करते हैं। पश्चिम केन्द्र के नाटक निदेशक श्री अफ़सर आकाश ने केन्द्र द्वारा उदयपुर में स्थापित शिल्प ग्राम की जानकारी दी तथा बतलाया कि इस शिल्पग्राम में देश के पारम्परिक निष्पादन कलाओं से सम्बन्धित मुखौटा संग्रहालय बनाया जा रहा है।

उप सचिव (भाषा एवं संस्कृति) हिमाचल प्रदेश सरकार श्री श्रीनिवास जोशी ने कहा कि मासूम और भोला चेहरा लेकर हर प्राणी इस संसार में आता है। समाज को देखता है, उसकी विषमताएं और संभावनाएं इतनी गहन नज़र आती हैं उसे कि वह मुखौटा ओढ़ लेता है। अलग-अलग दायित्व निभाने के लिए अलग मुखौटा। मनुष्य की संतुष्टि भिन्न परिस्थितियों में बदलती चमड़ी के मुखौटों से न हुई तो उसने लकड़ी, धातु, खाल, मिट्टी, लुगदी का इस्तेमाल कर मुखौटे बनाए और उन्हें पहन वह सब बनने लगा जो वह समाज में न बन सका पर बनने की चाह रही।

माननीय शिक्षा मन्त्री हि. प्र. श्री सागर चन्द नैय्यर ने इस कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए अपने भाषण में कहा कि सांस्कृतिक केन्द्र देश की संस्कृति कला के उत्थान के लिए अच्छा कार्य कर रहे हैं। उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र के सदस्य होने का उन्हें स्वयं गर्व है। उन्होंने पारम्परिक मुखौटा निर्माण कार्यशाला जैसे अद्‌भुत कार्य की सराहना की।

मुखौटा निर्माण कार्य बिन्दूराज धर्मशाला हाल में सभी दिन प्रात: 10.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक ज़ारी रहा जिसे समय-समय पर कलाकारों व साहित्यकारों ने अवलोकित किया और कार्यशाला की सराहना की।

वित्तायुक्त (वित्त) एवं सचिव (भाषा और संस्कृति), हिमाचल प्रदेश सरकार श्री महाराज कृष्ण काव ने इस कार्यशाला के दौरान मुखौटों के निर्माण कार्य को अवलोकित किया तथा सभी

व्यवस्थापकों तथा कलाकारों को इस अद्भुत कार्य के लिए बधाई दी। उन्होंने कहा कि ग्राम्य परिवेश के पारम्परिक कलाकार कैसे अपनी सांस्कृतिक धरोहर का पोषण करते हैं, देखकर मन प्रसन्न हुआ।

मुखौटों की रचना प्रक्रिया पर 31 अगस्त तथा मुखौटों के विभिन्न प्रयोगों पर 8 सितम्बर को गोष्ठी का आयोजन हुआ। समापन समारोह 8 सितम्बर को सायं 4.00 बजे, वाई. डब्ल्यू. सी. ए. हाल शिमला हुआ तथा इसी हाल में कार्यशाला के दौरान निर्मित मुखौटों की प्रदर्शनी का आयोजन 8 सितम्बर से 11 सितम्बर तक भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा किया गया।

कार्यशाला में निर्मित मुखौटों की प्रदर्शनी का अवलोकन करते निदेशक आयुर्वेद हि० प्र०, श्री श्रीनिवास जोशी (दाएं) साथ खड़े हैं अकादमी सचिव डॉ० बंशीराम शर्मा

इस कार्यशाला में हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से 20 मुखौटा शिल्पकारों तथा पश्चिम बंगाल के 2 शिल्पकारों ने भाग लिया। कार्यशाला के दौरान इन शिल्पकारों द्वारा 89 मुखौटों का निर्माण किया गया जिनमें से 46 मुखौटे पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र और 43 मुखौटे हिमाचल अकादमी को आबंटित हुए हैं।

इस कार्यशाला के दौरान प्रतिभागी शिल्पकारों से लिए गए साक्षात्कार के अनुसार मुखौटों से सम्बन्धित ज़ानकारी एकत्रित की गई है जो शोधात्मक दृष्टि से अंतिम रूप में नहीं मानी जानी चाहिए क्योंकि अभी इसके लिए विस्तृत रूप से अनुसन्धान की आवश्यकता रहेगी, फिर भी महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत है। हिमाचल प्रदेश में हालांकि अनेक स्थानों में अनेक प्रकार के मुखौटे बनाए जाते हैं, लेकिन वर्तमान में उन मुखौटों के स्थान तथा निर्माण शैली आदि का उल्लेख है जो कार्यशाला के दौरान निर्मित किए गए हैं।

**काष्ठ मुखौटे** – लकड़ी के मुखौटों के निर्माण के लिए किन्नौर, कुल्लू, सिरमौर तथा चम्बा ज़िलों से शिल्पकारों ने कार्यशाला में भाग लिया।

लकड़ी के मुखौटे तैयार करने के लिए प्राय: जिन औज़ारों का प्रयोग किया जाता है, उनके नाम हैं:- आरी, बसोला, निआण (खोदने के लिए अनेक प्रकार के तिरछे, गोल, त्रिकोण व चपटे आकार), रंदा, पथरी, हथोड़ी गेरमेट, रेगमार, छैणी, चोसा, दु-फटा आदि। मुखौटा टूटने पर या लकड़ी के अलग टुकड़े को जोड़ने के लिए कील, फैवीकोल का प्रयोग किया जाता है।

**ज़िला किन्नौर**:- स्थानीय बोली में मुखौटे को बग्ग कहा जाता है। किन्नौर के सांगला व सुंगरा क्षेत्रों में अखरोट की लकड़ी से मुखौटों का निर्माण किया जाता है। लकड़ी के एक बड़े पीस को खोद व तराश-तराश कर मुखौटा तैयार किया जाता है। नाक, कान के लिए लकड़ी के अलग टुकड़ों को भी प्रयोग में लाया जाता है। मुखौटे के चेहरे पर अधिक रंग का प्रयोग नहीं होता है। आंखों में काला तथा सफेद, होंठ व जिह्वा पर लाल, दांतों में सफेद रंग का प्रयोग होता है। इसके अलावा आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं रंग का प्रयोग किया जाता है। मुखौटे को चमकाने के लिए वारनिश या स्थानीय तरीके में चीड़ के वृक्ष का रुलदू, उबाल उबाल कर तैयार किया तरल पदार्थ प्रयोग में लाया जाता है। जिन मुखौटों का निर्माण किया जाता है उनके नाम हैं:-काली, जिबटा (राक्षस), शेर, हाथी, गरुड़, आदमी, औरत, बच्चा आदि।

ज्येष्ठ महीने में संक्रांति से 15 प्रविष्टे तक रात्रि को मेला लगता है जिसे जेष्टन सवां के नाम से जाना जाता है। काली का दोष हटाने के लिए मुखौटे पहन कर "बूढ़ा-छंग" नृत्य किया जाता है। छंग का अर्थ है-बच्चा। लगभग 15–20 कलाकार नृत्य करते हैं।

तहसील सांगला के शिल्पकारों सर्वश्री उरगिन-डण्डुव, रूबी लाल तथा सुन्दर लाल ने कुल 12 मुखौटों का निर्माण कार्यशाला के दौरान किया जिनके नाम इस प्रकार से हैं:-जिबटा, राक्षस, आदमी, औरत (तीन), राक्षस काली, नरसिंह, छोसिन, लोमड़ी,हाथी।

**ज़िला कुल्लू**:– देवी-देवता के मुखौटों को स्थानीय बोली में मोहरे कहा जाता है। तहसील बंजार के क्षेत्रों में प्रचलित मढियाले अनुष्ठानिक नृत्य में प्रयोग किए जाने वाले मुखौटों को "मढियाले" के नाम से जाना जाता है। इन मुखौटों को कुछ स्थानों पर "ऋषे" भी कहा जाता है। एक प्रकार का मुखौटा "ऋषि" देवी के नाम से भी प्रचलित है जो कुब्जा (कृष्ण काल की पात्र) का माना जाता है। ऋषे व मढियाले बनाने के लिए, मुहूर्त निकाला जाता है। ऋषि के निर्माण से पहले परम्परा से मेढ़े की बलि दी जाती है तथा तैयार होने के उपरान्त प्रतिष्ठा कराई जाती है। ऋषि का मुखौटा टेढ़े मुंह वाला बनाया जाता है।

मढियाले नामक मुखौटे प्राय: अखरोट व खनोर (जंगली अखरोट) की लकड़ी से तैयार किए जाते हैं। कभी-कभार शीशम, तोश आदि लकड़ी का भी प्रयोग कर लिया जाता है। मुखौटे पर अधिक रंगों का प्रयोग नहीं होता है। आंख में "काला व सफेद, दांत पर सफेद, होंठ पर लाल रंग का प्रयोग होता है। इसके अलावा कोई विरला रंग ही मुखौटे में प्रयोग होता है। कच्चे रंग में पानी, सरेश तथा कड़वा तेल मिश्रित किया जाता है।

फाल्गुन मास में 1 से 4 प्रविष्टे तक फागुन मेले का आयोजन होता है। यह मेला केवल दिन में ही होता है। इस मेले के दौरान मन्दिर में पूजा होती है। ऋषि का मुखौटा पहनकर नारायण के पुजारी

कार लगाते हैं। उसके उपरान्त भगवान विष्णु की सपाल घर-घर जाती है। मढियाले ओढ़ कर लोग घर घर जाते हैं। ऋषि का मुखौटा मन्दिर से बाहर नहीं ले जाय। जाता है। इस दौरान परम्परागत राजपूत घरानें का बड़ा भाई मुखौटा पहनेगा। मन्दिर से घर-घर जाएंगे। इस दौरान ढाड (ढोल की तरह) आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग होता है। सिर में ऊन का टोप लगाया जाता है तथा शड्ली (जंगल की घास) पहनी जाती है। घर-घर जाकर शीश तथा धूप दी जाती है तथा गाली देते हैं। उद्‌देश्य यह रहता है कि पशुओं को बीमारी न लगे, प्रचण्ड शक्तियों से बचाव हो, गुप्त रोग न लगे, अच्छी फसल हो, धन आए तथा परिवार सुखी हो। मूड़ी (भूनी हुई कनक, पूड़े आदि) का प्रसाद दिया जाता है। तहसील बंजार के सर्वश्री चेपा राम, केवली राम तथा तहसील आनी से सर्व श्री सेबीराम व अमरचन्द ने कुल 15 मुखौटों का निर्माण किया जिनके नाम हैं:- देवता बडराची, देवता जड़, देवता नाग (दो), देऊ, खीड्डू नाग-देवता, औरत (दो), आदमी (पांच), ऋषि (दो)।

**तहसील निरमण्ड**:- तहसील निरमण्ड में शिवरात्रि तथा बैशाख में निरशु मेला के दौरान स्वांग के लिए मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। यह मुखौटे खलड़ा, अखरोट व ब्रास की लकड़ी से बनाए जाते हैं। शिल्पकार सर्वश्री बिसू राम तथा मस्त राम ने 7 मुखौटों का निर्माण किया, जिनके नाम हैं:- बाघ, आदमी, काली, घोड़ा, बूढ़ी (दो), जोकर। विकृत व मज़ाकिया रूप दिखाने तथा व्यंग्य के लिए आदमी व औरत के मुखौटे टेढ़े बनाए जाते हैं।

**ज़िला चम्बा**:—चम्बा के जनजातीय क्षेत्र भरमौर में प्रचलित लोक नाट्य "हिरणात्तर" में मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। इन मुखौटों को स्थानीय बोली में मुहारे कहा जाता है।

मुहारे मन्दर व ठांगी लकड़ी के बनाए जाते हैं जो सपाट होते हैं। मुहारे को सिर पर टोपी की तरह पहने गए नगाल लकड़ी के "खड़बुजू" के साथ प्रयोग में लाया जाता है। इन मुखौटों पर सफेद रंग किया जाता है। आंखों में लाल व काला तथा जिह्वा व होठों में लाल रंग का प्रयोग होता है। कानों के पास नीला व हरा रंग मुखौटों की अलग पहचान के लिए किया जाता है। दाड़ी व मूंछ के लिए बकरे के बालों का प्रयोग होता है।

इन मुखौटों को लोक नाट्य हिरणात्तर में परम्परागत रूप से फाल्गुन उत्सव में होली उत्सव के बाद आठ दिन तक शाम को खेला जाता है। श्री दास ने कार्यशाला में तीन मुखौटों का निर्माण किया।

**ज़िला सिरमौर**:—सिरमौर में स्थानीय बोली में मुखौटे को मुखड़ा कहा जाता है। कुछ क्षेत्रों में "शीटू और "ब्रागटू" नामक मुखौटों का निर्माण किया जाता है। इन मुखौटों को ब्रास की लकड़ी से निर्मित किया जाता है। शीटू मुखौटा आगे को एक फुट तथा ब्रागटू मुखौटा दो फुट लम्बा होता है। इन मुखौटों को लकड़ी के एक पीस से ही तैयार किया जाता है। आंख में काला व सफेद, दांतों में सफेद तथा जिह्वा में लाल रंग का प्रयोग किया जाता है। कार्तिक महीने में दीपमाला के अगले दो दिन मेला लगता है। इसमें देवता का बन्धन तोड़ने के लिए दो हरिजन इन दो मुखौटों को पहनकर नृत्य करते हैं। श्री जमणू राम ने कार्यशाला में चार मुखौटों (2 शीटू तथा 2 ब्रागटू) का निर्माण किया।

**लुगदी मुखौटे:-** लुगदी मुखौटों के निर्माण के लिए किन्नौर व शिमला से शिल्पकारों ने इस कार्यशाला में भाग लिया।

**ज़िला किन्नौर:-** बौद्ध धर्म प्रधान क्षेत्रों में लामाओं द्वारा अपने नृत्य/उत्सवों में लुगदी के मुखौटों का प्रयोग किया जाता है।

चिकनी मिट्टी में कागज़, रुई, सरेश, लट्ठा (कपड़ा) के टुकड़े, जड़ी-बूटी (दवाई), चंदन, विभिन्न प्रकार के धूप यथा आकूरा, शुक्र, चैलू तथा विभिन्न प्रकार के रत्नों यथा फिरोज़ा, मूंगी, हीरा, मोती, मुमेन ज़ी तथा नीलम का चूरा मिश्रित करके लुगदी तैयार की जाती है।

मिट्टी का एक सांचा तैयार किया जाता है। उस पर लट्ठे के बारीक कपड़े की एक तह बिछा दी जाती है। फिर उस पर लुगदी की तहें बिछाई जाती हैं। तहें बिछाने तथा चेहरे का आकार देने के लिए लकड़ी के विभिन्न प्रकार के गोल, चपटे, तिरछे औज़ार/चम्मच प्रयोग में लाए जाते हैं।

पहाड़ की ढांकों में नीला, हरा, पीला, लाल, काला, सफेद पत्थर मिलता है। आग में पत्थर गर्म करने से वह पिघलता है। उसे पानी तथा सरेश में मिला कर रंगने के लिए तैयार किया जाता है। बकरी के सींग को उबाल-उबाल कर निकला तरल पदार्थ सूखा कर रख दिया जाता है जिसे स्थानीय तरीके के रूप में सरेश के बदले प्रयोग में लाया जाता है। लुगदी के मुखौटे के सूखने के उपरान्त उस पर रंग किया जाता है और फिर रंग सूखने के बाद वारनिश या स्थानीय तरीके में चीड़ के वृक्ष का रलदू उबाल-उबाल कर तैयार तरल पदार्थ को मुखौटा व रंग चमकाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। मुखौटा गिरने पर टूटता नहीं है। अगर कभी टूट भी जाए तो सरेश आदि से जोड़ दिया जाता है।

कई प्रकार के मुखौटों का निर्माण किया जाता है और प्रत्येक मुखौटे का मुख्य रंग अलग-अलग होता है। कुछ मुखौटों का विवरण निम्न प्रकार से है:-

(1) छोकयुम (धर्मराज) मुख्य रंग नीला।
(2) गुरू रिम्बो छे: (पद्म सम्भव) मुख्य रंग हल्का भूरा।
(3) छाकडोर (बज्रपाणि) मुख्य रंग सलेटी।
(4) थक्कम कवाली (हड्डी का पिंजर) मुख्य रंग सफेद।
(5) बोनबोछाकठू (तारा-देवी/रक्षा का रूप/आवालो कीशोरी मुख्य रंग नीला।
(6) चामिन देवता मुख्य रंग लाल।
(7) इवी (पुरुष) मेमे (महिला)।

मुखौटों का निर्माण देवता की पूजा के बाद ही किया जाता है। प्रत्येक वर्ष 7 पौष से 10 पौष तक लामा पौष मेला में मुखौटा ओढ़ कर नृत्य करते हैं तथा 10 पौष से 16 पौष तक इन मुखौटों को गांव ले जाते हैं। इन मेलों में छम्म के अनेक प्रकार के नृत्य किए जाते हैं। मठों में लामा लोग इन मुखौटों को रखते हैं। इसके अलावा गांव में पंचायत के यहां मुखौटों का एक सैट उपलब्ध रहता है।

इन मुखौटों का निर्माण कार्य प्राय: 'पोन' खानदान वाले करते हैं, जो देवी-देवताओं की मूर्तियां भी बनाते हैं।

सर्वश्री दोरज़े राम तथा छेरिंग नमग्याल ने कुल 10 मुखौटों का निर्माण किया जिनके नाम हैं — छाकडोर, छोकयुम, थक्कम, कवाली, बोनबोछाकठू, गुरू रिम्बोछे, बूटी, गरूड़ (दो) आदमी, चामिन।

**ज़िला शिमला**:– तहसील जुब्बल के क्षेत्रों में बूढ़े नामक "स्वांग" में प्रयोग किए जाने वाले मुखौटों को बूढ़े के नाम से जाना जाता है।

परम्परा से पहले इन मुखौटों को लकड़ी से बनाया जाता रहा है। बाद में पेपरमशी से भी मुखौटे तैयार किए जाने की प्रथा आरम्भ हुई।

पेपरमशी शैली में कागज़ को चार-पांच दिन तक भिगो कर कागज़ की लुगदी बनाई जाती है जिसमें मेथी पाउडर तथा आटे की लेवी मिलाई जाती है। मिट्टी से मुखौटे का एक सांचा तैयार किया जाता है। इस सांचे के ऊपर लुगदी की तहें डाल-डाल कर मुखौटा तैयार किया जाता है। लुगदी को ठीक करने व तराशने के लिए लकड़ी के विभिन्न किस्म के चपटे, गोल, नोकदार औज़ार प्रयोग में लाए जाते हैं। इसके अलावा वायरटूल (लकड़ी के दोनों ओर कसी हुई तार) को भी प्रयोग में लाया जाता है।

स्थानीय तरीके से रंग बनाने के लिए गेरू (केसर), सफेद मिट्टी, लकड़ी के धुंए से तैयार काएल, सरसों व चुली का तेल तथा कैल के पेड़ से निकाली गोंद का प्रयोग किया जाता है। काएल को सरसों व चुली के तेल में मिला कर काजल तैयार किया जाता है। गेरू पानी व गोंद में मिला कर रंग तैयार किया जाता है। अब तो बाज़ार से ही रंगों को खरीद करके प्रयोग में लाया जाता है।

बिशु मेला के दौरान, हरिजन देवताओं की गाथाएं व गीत गाते हैं। गाथा व गीतों की समाप्ति के उपरांत दो दलों द्वारा मुखौटे पहनकर "बूढ़े" नामक स्वांग व नृत्य किया जाता है जिनमें दोनों दल आपस में एक दूसरे को उलाहना देते हैं व मज़ाक करते हैं। मुखौटा पहनकर स्वांग व नृत्य इसलिए करते हैं ताकि शर्म न लगे और हर प्रकार का मज़ाक किया जा सके। पात्रों/मुखौटों में बूढ़ी, माली, सियाण, भाट, जेठा, बूढ़ा आदि सम्मिलित होते हैं। कार्यशाला में श्री ओमप्रकाश शर्मा ने उक्त पांच मुखौटों का निर्माण किया।

**कागज़ मुखौटे**

**ज़िला हमीरपुर**:– ज़िला हमीरपुर के सुजानपुर क्षेत्र में मुखौटों के निर्माण की प्रक्रिया बहुत पुरानी नहीं है। होली उत्सव, जन्माष्टमी व रामलीला में इन मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। ये मुखौटे प्रदेश के बाहर से खरीद कर लाए जाते थे, लेकिन लगभग 30 वर्ष पहले सुजानपुर के श्री कृपा राम ने मुखौटों की निर्माण प्रक्रिया जयपुर से सीख कर स्वयं बनाने आरम्भ किए तथा अपने पुत्र को भी यह काम सिखाया।

इन मुखौटों का निर्माण कागज़ से किया जाता है। प्रत्येक मुखौटे के लिए एक सांचा तैयार किया जाता है तथा कागज, मिट्टी, कपड़ा व गोंद से लुगदी तैयार की जाती है।कागज़ की तहें सांचे पर बिछा-बिछा तथा चिपका कर मुखौटा निर्मित किया जाता है। खाली स्थान भरने के लिए लुगदी का प्रयोग किया जाता है। इन मुखौटों को पात्रता के अनुसार विभिन्न रंगों से सजाया जाता है।

बाली, सुग्रीव, हनुमान, रावण, राक्षस, सूर्पणखा, हरिण, हाथी, गणेश, भालू आदि मुखौटों को तैयार किया जाता है। कार्यशाला में श्री कृपा राम तथा श्री विजय कुमार ने 10 मुखौटों का निर्माण किया जिनके नाम हैं:- राक्षस (3), हनुमान (2), शेर, हिरण, जटायु, गाय व हाथी।

**पश्चिम बंगाल**:- पूर्व क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, कलकत्ता द्वारा पूर्लिया छाऊ नाच में प्रयोग किए जाने वाले मुखौटे बनाने वाले शिल्पकारों को इस कार्यालय में भाग लेने के लिए भेजा था। छाऊ की अन्य शैलिया बंगाल में मयूरगंज के नाम से तथा बिहार में सीराहकला छाऊ नाच के नाम से प्रचलित हैं। स्थानीय भाषा में मुखौटे को मुखस कहा जाता है।

राख मिट्टी का सांचा तैयार किया जाता है। उसके ऊपर पाऊडर राख फैंकी जाती है और तदोपरान्त मैदा व आटे की लेवी से कागज़ चिपकाए जाते हैं। चिकनी व सफेद मिट्टी के घोल के साथ कपड़ा चिपका दिया जाता है तथा हाथ व थापी से आकार ठीक करके सूखने को रख दिया जाता है। सूखने के बाद मुखौटे से सांचा निकाल लिया जाता है। सफेद मिट्टी से किनारे बंद कर दिए जाते हैं। आंखों को छिद्र करके तथा होंठों, दातों की शेप निखारने के बाद मुखौटे में पात्रता के अनुसार रंग तथा उस पर सजावट की जाती है। सजावट में निकल, टिगली मुकुट, कनफेरी, साज, चिड़िया, बतख व मुर्गी के पंख, रोलरा टिमली, मटर काठी, जामीर पत्ता, जुही फूल, तार, प्लास्टिक फूल, रोलिक्स माला, रजनी गंधा इत्यादि वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। मूंछे पटसन वृक्ष की सेल-जूट से तैयार की जाती हैं।

औज़ारों आदि में थापी (समतल करने के लिए)तुली (ब्रुश), लकड़ी की मुकट (हथौड़ी), खून्ती, कैंची, प्लास, फोड़न आदि का प्रयोग होता है।

एक कहावत के अनुसार राजा बाण, शंकर का भक्त था। उसने चैत/बैशाख महीने की संक्रान्ति में गाजण मेले में रात्रि को मसाल जला कर छाऊ नाच आरम्भ करवाया। छाऊ-नाच में रामायण, महाभारत तथा गणेश के खेल खेले जाते हैं।

कार्यशाला में श्री गोपाल चन्द्र सूत्रधर तथा उनके पुत्र सुदांशु सूत्रधर ने कुल 9 मुखौटों का निर्माण किया जिनके नाम हैं घटोत्कच, अही रावण, किरात (दो), किरातीन (दो), हनुमान, चोबा, बानर।

**खाल आदि मुखौटे**

**ज़िला सिरमौर**:- खाल मुखौटों के लिए तहसील राजगढ़ (सिरमौर) से शिल्पकारों ने भाग लिया। हालांकि जानवरों के शिकार की रोक के कारण खाल मुखौटों की परम्परा खत्म सी हो गई है फिर भी

पुरानी खाल से मुखौटों को तैयार किया गया। स्थानीय भाषा में मुखौटे को मुखड़ा कहते हैं। कुछ मुखौटे लकड़ी के ऊपर खाल लगाकर तैयार किए जाते हैं तथा कुछ टीन लकड़ी व तूमड़ी के साथ खाल व ऊन का प्रयोग करके इन्हें तैयार किया जाता है। इन मुखौटों का प्रयोग "बूढ़ी दीवाली" — उत्सव के दौरान स्वांग तथा लोक नाट्य करयाला, एकादशी में मेले में दीपावली के दूसरे दिन शीटू व ब्रागट् नृत्य व स्वांग में प्रयोग किए जाते हैं। इस क्षेत्र के शिल्पकारों ने शीटू मुखौटा खाल से तैयार किया जिसके अन्दर लकड़ी का प्रयोग किया गया।

सिरमौर, शिमला के क्षेत्रों में अनेक हारें प्रसिद्ध हैं जो वीर गाथाओं व आपस के झगड़ों से सम्बन्धित होती हैं। ऐसी गाथा से सम्बन्धित नाटक व स्वांग रचाने के लिए भी मुखौटों का प्रयोग किया जाता है।

सर्वश्री यज्ञदत्त शर्मा, श्याम सिंह तथा देवी राम ने कुल 12 मुखौटों का निर्माण किया जिनके नाम **हैं :— बकराक्षस, साधु, खोपड़ी, शीटू, औरत, आदमी (छः) व भालू।**

मुखौटों का निर्माण करते कलाकार

## धातु मुखौटे

**ज़िला कुल्लू:-** ताम्बे व पीतल से देवी-देवताओं के मुखौटे तैयार किए जाते हैं। मुखौटों को स्थानीय बोली में मोहरे कहा जाता है। मोहरा तैयार करने के लिए ताम्बे व पीतल के एक पीस को प्रयोग में लाया जाता है, मुखौटा तैयार करने के लिए एहन, हथौड़ा, त्रिकोन, ग़ोल, चपटी ढांगी टांगी हथौड़ी, मशीन पंखा, लाख, बारीक छेनी, अंगीठी, तेजाब, आदि औज़ारों व सामग्री का प्रयोग किया जाता है। टांके के लिए सुहागा या पीतल, चांदी व मीठी जसत को प्रयोग में लाया जाता है। गन्धक व शोरे के तेज़ाब से सफाई की जाती है, चमक लाई जाती है तथा सोने का पानी चढ़ाया जाता है। मिट्टी या चीनी के बर्तन में पानी, तेज़ाब और सोने की डली या पत्ती रखकर मुखौटा साफ किया जाता है।

कार्यशाला में श्री ताबे राम ने पीतल धातु के घटोत्कच व हिड़िम्बा के दो मुखौटे तैयार किए।

हिमाचल प्रदेश में विभिन्न मुखौटों की बिक्री नियमित रूप से नहीं होती है। आवश्यकतानुसार कभी-कभार ही मुखौटों का निर्माण होता है। इसके लिए खरीददार व ज़रूरतमंद द्वारा अनाज़ भी तथा पैसे भी दिए जाते हैं। मूल्य मेहनत व लकड़ी की क़ीमत पर ही निर्भर करता है।

## मुखौटा कार्यशाला में प्रतिभागी शिल्पकार

| क्र. सं. | शिल्पकार का नाम व पता | आयु | शिक्षा | व्यवसाय | कहां से सीखा |
|---|---|---|---|---|---|
| ज़िला चम्बा | | | | | |
| 1. | श्री दास<br>गांव व डाकघर प्रीणा | 66 | कोई नहीं | ज़िमीदारी | परम्परागत |
| ज़िला किन्नौर | | | | | |
| 2. | श्री उरगिन डण्डुव<br>गांव व डाकघर सांगला | 50 | कोई नहीं | मिस्त्री | परम्परागत |
| 3. | श्री सुन्दर लाल<br>गांव व डाकघर सांगला | 30 | कोई नहीं | कृषक, मिस्त्री | परम्परागत |
| 4. | श्री रूबीलाल<br>गांव व डाकघर सांगला | 27 | कोई नहीं | कृषक, मिस्त्री | परम्परागत |
| 5. | श्री देरिंग नमज्ञाल,<br>गांव व डा. अकपा | 57 | तिब्बत से तांत्रिक ज्ञान का प्रशिक्षण | कृषक, मिस्त्री | तिब्बत से |
| 6. | श्री दोरजे राम,<br>गांव व डा. लिओ | 35 | पांचवीं तथा भोटी भाषा का ज्ञान | क्राफ्ट मास्टर, जनजातीय क्राफ्ट प्रशिक्षण केन्द्र, रिकांग पिओ | परम्परागत |
| ज़िला कुल्लू | | | | | |
| 7. | श्री बिसू राम, गांव शणू, डा. अरसू, तहसील निरमण्ड | 42 | पांचवी | हरिजन के पण्डित | रुचि से सीखा |
| 8. | श्री मस्त राम, गांव दड़ीधार, डा. अरसू, तह. निरमण्ड | 26 | नहीं | कृषक | रुचि से सीखा |
| 9. | श्री चेपा राम, गांव चोआरी, डा. खडांगी, तह. बंजार | 65 | नहीं | कृषक, मिस्त्री | परम्परागत |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 10. | श्री केवली राम, गांव होनधार, डा. बंजार | 29 | नहीं | कृषक, मिस्त्री | परम्परागत |
| 11. | श्री सेवीराम, गांव टिप्पल, डा. कंडागई, तह. आनी | 70 | नहीं | कृषक, मिस्त्री | परम्परागत |
| 12. | श्री अमर चन्द, गांव टिप्पल, डा. कंडागई, तह. आनी | 18 | नहीं | कृषक, मिस्त्री | परम्परागत |
| 13. | श्री ताबे राम, गांव व डा. ग्यागी | 33 | नहीं | लुहार | परम्परागत |
| | ज़िला सिरमौर | | | | |
| 14. | श्री यज्ञ दत्त शर्मा, गांव रोहड़ी (ब्राइला) डा. कोटला बांगी, तहसील राजकोट | 38 | प्रि-मैडिकल | फार्मिंग | शौकिया |
| 15. | श्री देवी राम, गांव जोल, डा. कोटला बांगी, तह. राजगढ़ | 43 | आठवीं | परम्परागत | शौकिया |
| 16. | श्री श्याम सिंह, गांव व डा. दाहन, तह. राजगढ़ | 35 | - | लुहार | " |
| 17. | श्री जमणू राम, गांव बांदली, डा. देवठी-मंझगांव, व-रास्ता बलग | 38 | प्राईमरी | खेतीबाड़ी | परम्परागत |
| | ज़िला हमीरपुर | | | | |
| 18. | श्री कृपा राम, गांव व डाकखाना सुजानपुर | 70 | नहीं | | जयपुर के कारीगरों से |
| 19. | श्री विजय कुमार, गांव व डाकघर सुजानपुर | 32 | नौंवी | दर्जी, पेन्टर | पिता से |
| 20. | श्री ओम प्रकाश शर्मा, गांव व डा. झडग, तहसील जुब्बल | 42 | क्राफ्ट प्रशिक्षण | अध्यापक | शौकिया |
| 21. | श्री गोपाल चन्द्र सूत्रधर, गां. चोड़िदा, डा. बागमुंइडी | 44 | तीन क्लास | मुखौटों तथा मूतियों का निर्माण | परम्परागत |
| 22. | श्री सुधांशु सूत्रधर, गांव चोड़िदा, डा. बागमुंइडी | 18 | आठ क्लास | -यथा- | परम्परागत |

**अशोक हंस**

जनजातीय क्षेत्र पांगी

# साच जात्तर व जुकारू त्यौहार

प्रदेश का दूरस्थ एवं दुर्गम स्थल पांगी अब विकास की करवट ले रहा है। लाहुल से होती हुई जम्मू कश्मीर के इश्तियारी स्थान पर मिलने वाली बस योग्य सड़क पांगी घाटी के ठीक बीचों बीच गुज़रेगी। सड़क का काम भारत सरकार द्वारा करवाया जा रहा है उदयपुर (लाहुल) से होती रोहली तक की सड़क भारी यातायात के लिए खोली जा चुकी है और कद्दूनाला जोकि चम्बा व लाहुल स्पिति ज़िलों की सीमा-रेखा है, तक जीप सड़क कार्यरूप प्राप्त कर चुकी है। इसी प्रकार जम्मू-काश्मीर के सौल स्थान से काफी आगे तक सड़क-निर्माण हो चुका है। पांगी के मुख्यालय किलाड़ से साच पास के रास्ते चम्बा से मिलने वाली सड़क घुघू घराट तक जीप योग्य है जहां प्रदेश के पथ परिवहन निगम की जीप चम्बा जाने व वहां से आने वाले यात्रियों को परिवहन सुविधा प्रदान कर रही है। पांगी घाटी के लोगों की विषम परिस्थितियों के मद्दे-नज़र प्रदेश सरकार ने वहां प्रत्येक आवश्यक सुविधाएं प्रदान की हैं। तुरन्त और प्रभावी फ़ैसले लेने के लिए आवासीय आयुक्त को नियुक्त किया गया है। विकास के लिए आवश्यक सभी कार्यालय वहां आवासीय आयुक्त के अधीन कार्य कर रहे हैं। विद्युत् सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से लगभग सारी घाटी में जैनरेटर के द्वारा बिजली दी जा रही है। जहां यह सुविधा उपलब्ध नहीं हो सकी वहां सौर विद्युत् का प्रबन्ध है। विकास की गति में सबसे बड़ी रुकावट मौसम है। यह क्षेत्र साल में लगभग आठ महीने बर्फ और सर्दी के प्रकोप से जकड़ा रहता है जिस कारण विकास कार्यों का हो पाना लगभग असम्भव होता है। पर यह स्थिति अधिक समय तक रहने वाली नहीं। सड़क निर्माण का कार्य पूरा होते ही इस मुश्किल पर विजय पा ली जाएगी।

पांगी घाटी के लाहुल की ओर किलाड़ से लगभग 13 कि. मी. की दूरी पर एक गांव है — साच। चारों ओर बर्फ से ढकी पहाड़ियों के मध्य 7000 फुट समुद्रतल की ऊंचाई पर स्थित यह गांव प्रकृति की अनमोल देन है। यहां पर कोई पैंतीस परिवार बसे हैं। वन व लोक निर्माण विभागों के रैस्ट हाऊस हैं। आयुर्वेद व पशु चिकित्सालय, बिजली बोर्ड, लोक निर्माण व जन स्वास्थ्य विभागों के उपमण्डल, प्राथमिक व उच्च पाठशालाएं, पटवार सर्कल, फॉरेस्ट रैंज व कृषि कार्यालय अर्थात् जनसुविधा के लिए प्रत्येक आवश्यक कार्यालय यहां स्थापित है।

अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को अपने भीतर संजोए इस गांव में नागों का आधिपत्य है। गांव के ऊपरी हिस्से में दो नाग मन्दिर हैं — जोगेश्वर नाग और प्रौढ नाग के। साथ ही एक शिवदिवाला है। स्थानीय शैली में निर्मित इन मन्दिरों का निर्माण लकड़ी से किया गया है। मन्दिर के

बाह्य भाग में उकेरण कार्य हुआ है जो अलग-अलग ऑब्जेक्ट्स दर्शाता है। इन मन्दिरों से थोड़ा और ऊपर खेतों के साथ एक अन्य नाग मन्दिर है — माहल नाग का। इसके अतिरिक्त दो छोटे-छोटे मन्दिर भी हैं जिन्हें पिन्याट नाग व घारे नाग का निवास स्थान माना जाता है। गांव की दूसरी ओर चन्द्रभागा नदी के पार पांगी क्षेत्र की सुप्रसिद्ध और अधिष्ठात्री देवी मिन्धल का प्राचीन मन्दिर स्थापित है।

यहां के मेले त्यौहारों में सबसे प्रसिद्ध साच जात्तर है जो यहां के जनमानस से जुड़ी होने के कारण विशेष स्थान रखती है। इस जात्तर का पूर्व दर्शित सभी नागों से सम्बन्ध है। प्रत्येक वर्ष भादों मास की पूर्णमाशी के पश्चात् नौवीं तिथि से इस जातर का प्रारम्भ होता है। इस दिन जोगेश्वर व प्रौढ़ नागों की विधि विधान से पूजा अर्चना की जाती है। तद्पश्चात सभी पांच अर्थात् जोगेश्वर, प्रौढ़, माहल, पिन्याट व घारे नागों का मिलन होता है। नौवी के दिन साच गांव के सभी लोग, जिसे स्थानीय बोली में 'प्रजा' कहा जाता है, प्रात: जोगेश्वर व प्रौढ़ नाग मन्दिरों के प्रांगण में इकट्ठे होते हैं और दोनों नाग मन्दिरों के प्रांगण में जाकर पूजा-अर्चना करते है। इस अवसर पर "डंगवार" (मेढे) की बलि दी जाती है। इस सारी प्रक्रिया की समाप्ति के पश्चात् सभी लोग अपने-अपने घरों को वापिस चले जाते हैं। इसी दिन दोपहर होने के बाद माहल नाग के स्थान की ओर प्रस्थान करते हैं। यहां भी उक्त नाग देवता की पूजा अर्चना की जाती है और डंगवार की बलि दी जाती है। इसके पश्चात् वहां गया प्रत्येक आदमी पेड़ों की टहनियां, जंगली फूल व झाड़ियां तोड़कर अपने हाथ में उठाए खूब शोर शराबा, हो-हल्ला करते व सीटियां बजाते जात्तर-स्थल की ओर वापिस आते हैं। इस प्रकार से शोर करने में यह अवधारणा छिपी है कि ऐसी क्रिया भूतों-दुष्टात्माओं व अपशगुनों को दूर भगाती है और जात्तर निर्विघ्न सम्पन्न होती है। झाड़ियां, टहनियां व फूल आदि उठाकर लाने को "रथ" कहा जाता है।

मन्दिर प्रांगण में वापिस आकर सभी व्यक्ति (मर्द) लोक-नृत्य करते हैं, जो तकरीबन तीन से चार घण्टे तक चलता है। नृत्य सम्पन्न होने के उपरान्त मन्दिर के किवाड़ बन्द कर दिए जाते हैं और सभी उपस्थित लोग "रथ" के साथ समूह में स्थानीय वाद्य-यन्त्रों को बजाते साच गांव के मध्य स्थित एक स्थान विशेष की ओर जाते हैं। यहां पहुंचकर भी खूब हो-हल्ला किया जाता है और सीटियां बजाई जाती हैं। फिर हाथों में उठाई झाड़ियां, टहनियां, फूल आदि उस जगह पर छोड़कर अपने-अपने घरों को वापिस चले जाते हैं।

अगले दिन क्षेत्र की सारी प्रजा पुन: जोगेश्वर व प्रौढ़ नाग मन्दिरों के प्रांगण में आकर पूजा अर्चना करती हैं। पिछले दिन काटे गए डंगवारों के हिस्से, जिसे 'पत्ती' कहते है, डाले जाते है और इसे सारे प्रजावासी आपस में बांट लेते हैं। कुछ देर नृत्य का कार्यक्रम चलता है। वाद्यन्त्र बजाए जाते हैं और फिर इन वाद्यन्त्रों को बजाते हुए सारे लोग अपने-अपने घरों को वापिस चले जाते हैं। इस प्रकार यह मेला सम्पन्न होता है।

उपरोक्त मेले के अतिरिक्त सर्दियों के त्यौहार के रूप में "जुकारू" का भी प्रचलन है। जुकारू का शाब्दिक अर्थ है — मेहमान आना। यह मेला फरवरी मास में मनाया जाता है। साच क्षेत्र के कुछ गांवों को छोड़कर यह मेला शेष स्थानों पर तीन दिनों तक चलता है जिसे जुकारू के

अतिरिक्त "दुआलू" (दूसरा दिन) व चियालू (तीसरा दिन) कहते हैं।

जुकारू में सम्पूर्ण गांव के लोग भोजपत्र में पूरियां जिन्हें स्थानीय बोली में "लोची" कहा जाता है, बांधकर एक दूसरे के घर जाते हैं (भोजपत्र को बहुत पवित्र माना जाता है और यह वहां के ऊपरी (भटोरी) क्षेत्रों में काफी मात्रा में उपलब्ध हैं)। आगन्तुकों का गृह-निवासियों द्वारा हार्दिक स्वागत किया जाता है, वे आपस में गले मिलते हैं। आयु में प्रत्येक बड़े के चरण स्पर्श किए जाते हैं। अपने साथ लाई लोचियों को उस घर में भेंट स्वरूप दिया जाता है। मेज़बान, अतिथियों को उन लोचियों में से एक-एक ग्रास खिलाते हैं तथा राख (स्थानीय शराब) का एक पात्र (पैग) प्यार एवं सम्मान स्वरूप पिलाया जाता है। यह सिलसिला गांव के प्रत्येक घर में चलता है अर्थात् गांव के प्रत्येक घर के लोग एक-दूसरे के घर आते-जाते हैं और उपरोक्त रस्म निभाते हैं।

दुआलू में लगभग वही प्रक्रिया अपनाई जाती है जो जुकारू में होती है। पंर मिंधल, फिंडपार आदि गांवों में इस दिन धरती मां की पूजा कर ज़मीन की बीजाई की जाती है। ऐसा माना जाता है कि इस दिन धरती में किया गया बीजारोपण भरपूर फ़सल प्रदान करेगा। चाहे कितनी भी बर्फ क्यों न पड़ी हो दुआलू के दिन बीजाई आवश्यक की जाएगी।

साच गांव में दुआलू से अगले दिन यानि चियालू के दिन धरती पूजन एवं बीजारोपण किया जाता है। प्रक्रिया वही है जो मिंधल फिण्डपार आदि गांवों में है। इन गांवों में धरती मां की पूजा की विधि इस प्रकार है कि आटे का हल, बैल और बकरा बनाया जाता है। माणी (अनाज़ तौलने का पैमाना जिसमें 2 किलोग्राम के लगभग अनाज़ आता है) में आनाज़ (जिसे बीजा जाना हो) डालकर उपरोक्त तीनों वस्तुओं के साथ खेत में प्रवेश करते हैं। आटे के बकरे की बलि देकर उक्त आटे के हल (बैल सहित) को खेत में चलाने का अभिनय सा किया जाता है। फिर माणी से आनाज़ निकालकर खेत में फैंका (बीजा) जाता है और यह मान लिया जाता है कि इस दिन बीजाई कर दी है बेशक उचित प्रकार से बीजाई बाद में की जाए। तद्पश्चात समस्त प्रजा खेत में समूह रूप से सुगली (गायन का विशेष प्रकार जिसमें प्रश्न-उत्तर किए जाते हैं) गाते हैं और नाचते हुए अपने-अपने घरों को वापिस आ जाते हैं। कोई घर, अपने घर के समस्त संदस्यों सहित इस प्रक्रिया को अकेले ही करता है।

साच गांव में यह रस्म कुछ अलग प्रकार से मनाई जाती है और अन्तत: यह मेले का रूप धारण कर लेती है। सारी प्रजा इकट्ठी होकर एक मकान विशेष के "सरण" (कोठा/छत जिसे स्थानीय बोली में 'लढ़' भी कहते हैं) में साज-बाज के साथ नाचते गाते हैं। इस अवसर पर पूजा अर्चना की जाती है और मेला प्रारम्भ होता है। पूजा अर्चना के समय चेले (गूर) कमते (हिंगरते) हैं और जिज्ञासुओं की शंकाओं का निवारण व सुख समृद्धि का आशीर्वाद देते हैं। गांव के प्रत्येक घर का मुखिया वहां रखी रम्मी (गंडासे) को प्रकार-विशेष से घुमाते हुए नाचते हैं। घुमाते समय रम्मी हाथ से छूटनी नहीं चाहिए। यदि नाचते हुए रम्मी किसी के हाथ से छूट जाए तो उसे बहुत अशुभ माना जाता है। ऐसा होने पर उस व्यक्ति द्वारा जिसके हाथ से रम्मी छूटी हो, मेढे अथवा बकरे की बलि दी जानी आवश्यक है तभी नीचे गिरी हुई रम्मी उठाई जा सकती है।

चियालू वाले दिन साच गांव में उसी मकान विशेष के सरण पर आटे का बहुत बड़ा बकरा बनाकर खड़ा कर दिया जाता है। फिर सारी प्रजा में से, बारी-बारी तीर कमान लेकर प्रत्येक व्यक्ति उस बकरे का निशाना साधता है। जो निशानची उस बकरे को गिरा देता है उसे प्रजा में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और इसी खुशी में वह व्यक्ति अगले दिन उतना ही बड़ा आटे का बकरा पूर्व स्थान में रख देता है ताकि दूसरे भी निशाना लगाएं और उस बकरे को गिरा सकें।

ऐसा आयोजन लगभग सारी घाटी में किया जाता है पर उसकी तिथियां अलग-अलग हैं। साच में पंजालू, छियालू (पांचवें-छट्ठे दिन) तक यह मेला चलता है पर इन दिनों सिर्फ नाच गाना ही होता है शेष कार्य नहीं। कुमार-परमार, कुट्ठल, मिंधल, हिलौर आदि गांवों में जुकारू के नौवें और दसवें दिनों (नवालू-दसालू) तक नाच गाना चलता रहता है।

इस प्रकार सारे क्षेत्र में विभिन्न महीनों में अलग-अलग त्यौहार मनाए जाते हैं। कुछ त्यौहार गांव विशेष तक ही सीमित होते हैं और कुछ समस्त पांगी घाटी में। यद्यपि सारी घाटी बेशक अभी विकास की रोशनी का अनुभव न कर पाई हो पर अपनी समृद्ध संस्कृति और लोक-अनुष्ठानों पर उन्हें गर्व है। वह दिन दूर नहीं जब आधुनिक और पुरातन का आपसी मेल बाहरी संसार को इस सांस्कृतिक धरोहर से न केवल परिचित करवाएगा बल्कि लोक के क्षेत्र में कार्यरत जिज्ञासुओं को नए आयामों पर कार्य करने की प्रेरणा भी देगा। □

**रमेश जसरोटिया**

भूरी सिंह संग्रहालय चम्बा में सुरक्षित एक प्राचीन धातुमूर्ति

'केरिल' नृत्य करते ताबो गोन्पा के लामा

tharahkardu.in

HAACL पंजीकरण संख्या-28271/75

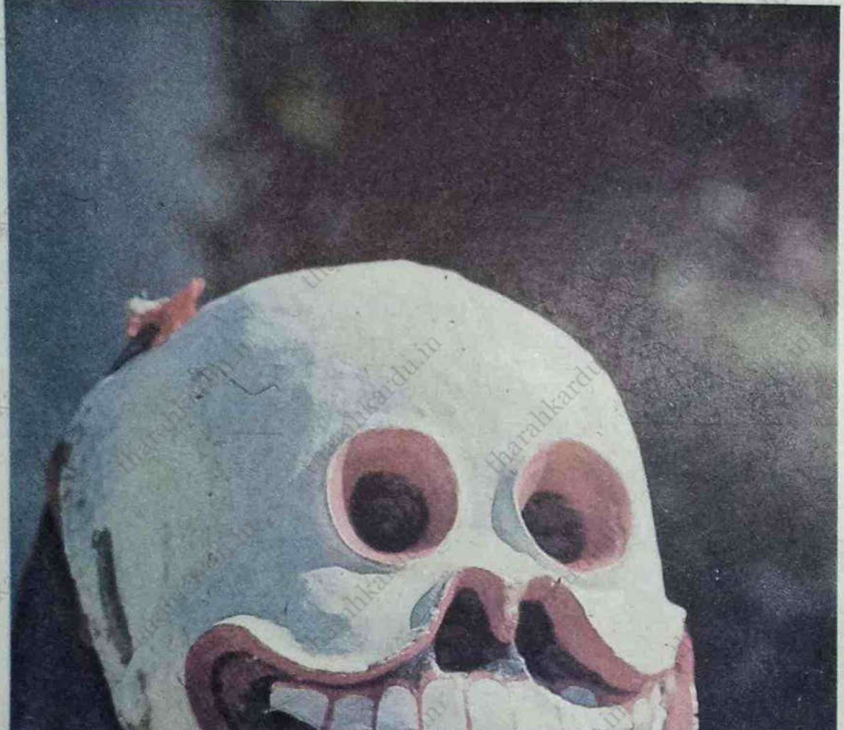

केरिल (केम्द्रिल) नृत्य में प्रयुक्त मुखौटा

सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला द्वारा प्रकाशित और
मैसर्ज एस.बी. प्रिंटर्ज, नयी दिल्ली- द्वारा मुद्रित